ओ३म्
आयुर्वेद
सिद्धान्त रहस्य

भोजन सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

1. भोजन की आचार संहिता

सभी भली प्रकार जानते है कि स्वास्थ्य के लिए भोजन का विशेष महत्व है। भोजन में क्या क्या खाया जाए, जहां इस बात का महत्व है, वहां यह जानना भी बहुत महत्व रखता है कि भोजन किस प्रकार और किन परिस्थितियों में किया जाए ? इन सब बातों पर विचार करके और इन पर आचरण करके हम भोजन से पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। कुछ महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं।

♦ स्निग्ध भोजन[444]

हमारे भोजन में भी घी, तेल आदि स्निग्ध द्रव्य पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। आजकल हृदय रोग, ब्लड प्रेशर और मोटापे आदि के डर से प्राय: लोग घी आदि का प्रयोग बिल्कुल न करके रूखा भोजन करते हैं। यह सर्वथा अनुचित है क्योंकि जहां घी, तेल, आदि से भोजन स्वादिष्ट बनता है और रुचि उत्पन्न होती है, वहीं भोजन मुलायम भी बनता है। इससे पाचक अग्नि तीव्र होती है, भोजन सुपाच्य बनता है, बल की वृद्धि होती है, इन्द्रियां दृढ बनती हैं और रंग में निखार आता है। घी, आदि स्निग्ध पदार्थो के सेवन से वायु का अनुलोमन होता है और मल विसर्जन में भी सुविधा होती है। जोड़ों के बीच स्निग्धता (चिकनाहट) बने रहने से उनमें आपस में रगड़ कम होती है और जोड़ों के रोगों की सम्भावना नहीं होती। आजकल रिफाइन्ड तेलों के प्रयोग के कारण ही जोड़ों में स्निग्धता कम होने से ये रोग बहुत अधिक फैलते जा रहे है। अत: भोजन में घी तेल आदि स्निग्ध पदार्थों का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

♦ ताजा और गर्म भोजन[445]

भोजन हमेशा ताज़ा और गर्म होना चाहिए। ऐसा भोजन स्वादिष्ट होने के साथ पाचक अग्नि को बढ़ाने वाला, सुपच और वायु का अनुलोमक होता है। यह पौष्टिक भी होता है, जबकि बासी और ठण्डा भोजन भारी, तामसिक और अपौष्टिक होता है।

♦ भोजन की सुन्दरता

भोजन का रंग, गन्ध, स्वाद तथा स्पर्श रुचिकर और सुन्दर होने पर देखते ही मुंह से लार टपकने लगती है। इसी प्रकार दूसरे पाचक रसों का स्राव भी अनुकूल रूप से होता है अत: भोजन में रुचि बढ़ाने के लिए भोजन और पात्रों का स्वच्छ, सुन्दर और आकर्षक होना आवश्यक है। रोगी के लिए इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए

444. स्निग्धमश्नीयात् स्निग्धं हि भुज्यमानं स्वदते, भुक्तं चानुदीर्णमग्निमुदीरयति, क्षिप्रं जरां गच्छति, वातमनुलोमयति, शरीरमुपचिनोति, दृढिकरोतिन्द्रियाणि, बलाभिवृद्धिमुपजनयति, वर्णप्रसादं चाभिनिर्वर्तयति। च.वि. 1/24/2

445. उष्णमनीयात उष्णं हि भुज्यामानं स्वदते, भुक्तंचाग्निमौदर्यमुदीरयति, क्षिप्रं जरां गच्छति, वातमनुलोमयति श्लेष्माणं च परिह्रास्यति, तस्मादुष्णमश्नीयात। च.वि. 1/24/1

क्योंकि निरन्तर पथ्य भोजन खाने से उसमें अरुचि उत्पन्न हो सकती है।

♦ सुन्दर और एकान्त स्थान

भोजन के साथ साथ उसके सेवन के लिए स्थान भी साफ-सुथरा सुन्दर आकर्षक और एकान्त होना चाहिए। पवित्र और सुन्दर स्थान में मन शान्त रहता है जबकि गंदे और घृणित स्थान पर बैठने से मन में अशान्ति होती है।

इसका भोजन के पाचन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। भोजन सेवन की क्रिया को एक पवित्र धार्मिक क्रिया समझ कर करना चाहिए अतः इस समय मन पूरी तरह एकाग्र होना चाहिए। अतः भोजन करते समय टेलीविजन, टेलीफोन आदि से दूर ही रहना चाहिए।

♦ मानसिक दशा

भोजन हमेशा शान्त और प्रसन्न मन से ग्रहण करना चाहिए। क्रोध, ईर्ष्या द्वेष चिन्ता, घबराहट, डर आदि की मानसिक दशा में जहां भोजन का स्वाद नहीं आता, वहीं पाचक रसों का स्राव भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। इससे भोजन का पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता अतः भोजन करते समय किसी प्रकार की अप्रिय चर्चा न करनी चाहिए और न ही सुननी और देखनी चाहिए।

♦ भोजन का उचित समय

भोजन के ठीक प्रकार से पाचन के लिए आवश्यक है कि इसका सेवन ठीक और नियत समय पर किया जाए। उचित समय पहचानने के लिए कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए जब भूख का अनुभव हो, पहले किया गया भोजन अच्छी तरह से हजम हो चुका हो (अन्यथा पहले भोजन का अधपचा रस और किये जा रहे भोजन का रस आपस में मिलकर सभी दोषों को कुपित कर देंगे और रोगों की उत्पति होगी) पहले किये गये भोजन के डकार न आ रहे हों, हृदय और पेट में भारीपन न हो, वायु का अनुलोमन हो जाए तथा मल मूत्र का त्याग हो चुका हो। पित्त वृद्धि का समय होने (जैसे मध्याह्न समय 12 से 2 बजे तक) पर भोजन किया जाए तो इससे भोजन शीघ्र और अधिक अंश में पचता है परिणामतः शरीर अधिक पुष्ट होता है।

ऐसा देखने में आता है भोजन का निश्चित समय आने पर अपने आप ही कुछ खाने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इस समय भोजन अवश्य कर लेना चाहिए क्योंकि तब पाचक रसों का स्राव पर्याप्त मात्रा में होता है। यदि इस समय भोजन न किया जाए तो पित्त कुपित हो जाता है शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार नियत समय बीत जाने के बाद वायु का प्रकोप हो जाता है, इसके पाचन शक्ति मन्द हो जाती है परिणामतः भोजन का पाचन ठीक तरह से नहीं होता।

यदि भूख लगने पर भी भोजन न किया जाए, तो शरीर में कमज़ोरी, कृशता, अंगमर्द (शरीर का दर्द से टूटना), तन्द्रा (सुस्ती), थकावट, अरुचि, त्वचा के रंग में बदलाव, दृष्टि में कमी आदि विकार उत्पन्न होने लगते हैं, अतः उचित और नियत समय पर भोजन करना आवश्यक है।

♦ भोजन की मात्रा[446]

पूरे पोषक तत्व प्राप्त करने के लिए भोजन का

सेवन उचित मात्रा में करना चाहिए। भोजन के बाद पेट का एक तिहाई भाग खाली रहना चाहिए जिससे पाचक रस और कफ भोजन के साथ अच्छी तरह मिल कर उसका पाचन कर सकें और वायु की गति भी ठीक प्रकार से हो सके। भोजन के पश्चात यदि पेट में दबाव व भारीपन और पार्श्वों में तनाव न हो, छाती में रुकावट और भारीपन न हों, भूख प्यास शान्त हो, उठने बैठने, सोने, चलने, हँसने श्वास लेने छोड़ने, एवं बातचीत करने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो, प्रातः ग्रहण किये भोजन का सांयकाल तक तथा सायंकाल ग्रहण किये गये भोजन का प्रातः तक अच्छी तरह पाचन हो जाए, वायु का अनुलोमन हो, तथा दोष, धातु, मल में किसी प्रकार का विकार न हो, तो समझना चाहिए कि भोजन उचित मात्रा में लिया गया है ।

भोजन की मात्रा का निर्णय करने के लिए मनुष्य को अपनी प्रकृति, आयु, पाचक-अग्नि की शक्ति, द्रव्यों का लघुत्व (हल्कापन) और अग्नि की तीव्रता पर विचार करना चाहिए, अच्छी पाचन शक्ति होने पर वे यदि कुछ अधिक मात्रा में या भारी भोजन भी ले लेंगे तो उन्हें अधिक कष्ट नहीं होगा, जबकि मन्द अग्नि वाला व्यक्ति थोड़ा भी अधिक या भारी खाने में कष्ट उठाएगा। इसी प्रकार यदि स्वभाव से ही लघु पदार्थों, जैसे मूंग, शालि चावल आदि कुछ अधिक मात्रा में सेवन कर लिया जाए, तो कष्ट प्रद नहीं होगा परन्तु बहुत अधिक मात्रा में सेवन करने पर ये पदार्थ भी भारी पदार्थों की तरह पचेंगे नहीं जबकि उड़द जैसे भारी पदार्थों का सेवन यदि थोड़ी मात्रा में किया जाए, या अजवायन, हींग आदि डाल कर उन्हें भी सुपाच्य बना लिया जाए, तो ये भारी पदार्थ भी शीघ्र हज़म हो सकते हैं। अतः इन सब बातों का ध्यान रखना आवश्यक है । संक्षेप में आवश्यकता से कम मात्रा में किया गया भोजन सन्तोष प्रदान नहीं करता और शरीर के बल को नष्ट करता है जबकि अधिक मात्रा में किया गया भोजन आलस्य, भारीपन, मोटापा और अपच आदि उत्पन्न करता है अतः भूख लगने पर व्यक्ति को अपनी पाचन शक्ति के अनुकूल मात्रा में भोजन करना चाहिए।

♦ भोजन चबा कर खाना

सबसे पहले भोजन मुख में जाता है, जहाँ इसमें लाला रस मिलता है। भोजन को दाँतों से जितना अधिक चबाया जाता है, उसमें लार भी उतनी अधिक मात्रा में मिलती है। इससे ठोस पदार्थ द्रव रूप में बदल जाता है, जिससे भोजन की पाचन क्रिया सरलता पूर्वक सम्पन्न हो जाती

---

446. ''कुक्षेरप्रपीडनमाहारेण, हृदयस्यानवरोधः, पार्श्वयोरविपाटनम्, अनतिगौरवमुदरस्य, प्रीणनमिन्द्रियाणां, क्षुत्पिपासोपरमः, स्थानासनशयनगमनोच्छवास प्रश्वासहास्यसंकथासु सुखानुवृत्तिः, सायं प्रातश्च सुखेन् परिणमनं, बलवर्णोपचयकरत्वं च, इति मात्रावतो लक्षणमाहारस्य भवति।।'' च.वि. 2/6

''मात्रा पुनः पिण्डपरिमाणतः समुदायेन प्रतिद्रव्यापेक्षया चाहारराशिः'' अ.स.सू. 10/9

''त्रिविधं कुक्षौ स्थापयेदवकाशांशमाहारस्याहारमुपयुञ्जानः तद्यथा-एकमवकाशांशं मूर्तानामाहारविकारणाम्, एकं द्रवाणाम्, एकं पुनर्वातपित्तश्लेष्माणम्, एतावतीं ह्याहारमात्रमुपयुञ्जानो नामात्राहारजं किञ्चिदशुभं प्राप्नोति ।'' च.वि. 2/3

है। इसके विपरीत, ठीक प्रकार न चबाने से ठोस व कठोर पदार्थ ही निगल लिये जाते है। इनको आमाशय आदि कोमल अंग ठीक प्रकार से मुलायम नहीं बना पाते। परिणामस्वरूप, एक तो आमाशय आदि अंगों को अधिक मेहनत करनी पडती है जिससे वे कमज़ोर हो जाते है। दूसरे, भोजन का पाचन पूरी तरह से नहीं हो पाता और अजीर्ण, क़ब्ज़ गैस जैसे रोग उत्पन्न हो जाते है। अतः चबा कर मुलायम किया गया भोजन निगलना चाहिए, बिना चबाये ठोस पदार्थ के रूप में नहीं।

◆ भोजन का सात्म्य[447]

सात्म्य का अर्थ है अनुकूलता। एक पदार्थ किसी एक व्यक्ति के लिए लाभकारी हो सकता है, तो दूसरे के लिए प्रतिकूल (असात्म्य) और हानिकारक हो सकता है, यह ज्ञान मनुष्य को अभ्यास और अपने अनुभव के आधार पर ही हो सकता है। भोजन से पूरे पोषक तत्व प्राप्त करने के लिए अनुकूल भोजन का सेवन ही उचित है जबकि प्रतिकूल पदार्थ लाभ के स्थान पर हानि पहुँचा सकते है। भोजन की अनुकूलता (सात्म्यता) निम्नलिखित प्रकार की है।[448]

- ❖ देह सात्म्य (जो पदार्थ व्यक्ति के शरीर के लिए उपयोगी होता है)
- ❖ देश सात्म्य (किसी विशेष स्थान में अनुकूल पदार्थ, जैसे पूर्वी स्थान पर रहने वालों के लिए सात्म्य, बंगाल, मद्रास, कश्मीर में रहने वालों के लिए चावल का सात्म्य)
- ❖ ऋतु सात्म्य (विशेष मौसम में हितकर पदार्थ, जैसे- शिशिर ऋतु में तिक्त और रूक्ष पदार्थ, तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतल पदार्थ)
- ❖ रोग सात्म्य (किसी विशेष रोग में हितकारक पदार्थ ; जैसे ज्वर में लाजपेया)

इन बातों को ध्यान में रख कर किया गया भोजन स्वास्थ्य की रक्षा करता है और रोगों को दूर रखता है।

भोजन करते समय यदि इन सब नियमों का पालन किया जाए, तो ऐसा भोजन शरीर को पुष्ट करता है। सभी दोषों और धातुओं को स्वस्थ अवस्था में रखता है और मल-मूत्र आदि के ठीक प्रकार से विसर्जन में सहायक होता है। ये सब नियम मिल कर ही भोजन की आचार संहिता कहलाते है। प्रत्येक व्यक्ति को भोजन ग्रहण करने के इस कार्य को बहुत महत्त्वपूर्ण और निजी कार्य समझना चाहिए। अपने व्यस्त जीवन में से भोजन का समय अपने लिए सुरक्षित रखना चाहिए और इस व्यक्तिगत कार्य को बहुत श्रद्धा और एकाग्रता से

---

447. ''तत्र सात्म्यं नाम सहात्मना भवत्यभ्यस्तं तदौचित्यादुपशेत इत्येके । सात्म्य विपरीतमनुपशयादसात्म्यम्।। अ.स.सू. 10/27

448. अन्ये पुनः प्रकृतिवयोदेशर्तुदोषव्याधिवशेन् सात्म्यं बहुविधमिच्छन्ति । ते ह्युपशयमात्रमङ्गीकृत्य विपरीतगुणमप्युपचारेण सात्म्यमाचक्षते ।तुल्यगुणम्चानुपशयाद् असात्म्यम्। अ.स.सू. 10/28

करना चाहिए।

इस प्रकार पथ्य और उचित आहार करने वाला व्यक्ति वैसे तो रोगी ही नही होता यदि किसी कारणवश बीमार हो भी जाए, तो परहेज़ पूर्वक भोजन से रोग बढ़ता नहीं और स्वयं ठीक हो जाता है। इस प्रकार औषधि की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत यदि मनुष्य अच्छी से अच्छी औषधि सेवन तो करता है, परन्तु पथ्य (परहेज़) का पालन नहीं करता, तो भी रोगी ठीक नहीं होता उसकी औषधि व्यर्थ जाती है। गलत आहार विहार (अपथ्य) रोग बढ़ाने में कारण है और कारण को दूर किये बिना रोग नष्ट नहीं हो सकता। इसीलिए कहा गया है कि "परहेज करने वाले रोगी को औषधि की क्या आवश्यकता और पथ्य न करने से रोगी को भी औषधि सेवन से क्या लाभ ?" इसी बात को दूसरे शब्दों में प्रकट किया गया है :

"विनापि भेषजैर्व्याधि पथ्यादेव निवर्तते ।
न तु पथ्य विहीनस्य भेषजानां शतैरपि ।।

अर्थात् औषधि के बिना भी रोग पथ्य पालन से दूर हो जाता है। परन्तु यदि पथ्य का पालन न किया जाए, तो सैकड़ों दवाओं से भी रोग नष्ट नहीं हो सकता।

2. पथ्य आहार[449]

भोजन से सम्बन्धित इन सब नियमों का पालन करते समय यह ध्यान भी रखना चाहिए कि जो भोजन, खाया जा रहा है, वह पथ्य (हितकर) हो। पथ्य आहार का अर्थ है-"जो खाद्य पदार्थ शरीर की धातुओं को उनकी सम अवस्था में बनाये रखते हैं तथा विषम (असन्तुलित) धातुओं को सम अवस्था में लाने में सहायक होते हैं तथा जो आहार शरीर के पथ (स्रोतों) के लिए हानिकारक नहीं होते तथा मन को प्रिय लगते हैं, वे पथ्य या हितकर पदार्थ कहलाते हैं। इसके विपरीत जो स्रोतों को हानि पहुचाएँ, धातुओं को सम अवस्था में न ला सकें तथा मन को अप्रिय लगें अर्थात् हानिकारक हों, वे अपथ्य या अहितकर पदार्थ हैं। पथ्य आहार विहार (खानपान और रहन सहन) का सेवन इससे भी अधिक आवश्यक है। ये पथ्य और

---

449. "पथ्यं पथोऽनपेतं यद्यचोक्तं मनसः प्रियम्।
यच्चाप्रियम पथ्यं च नियतं तन्न लक्षयेत् ।।" च.सू. 25/45

"मात्राकालक्रियाभूमिदेहदोषगुणान्तरम् ।
प्राप्य तत्तद्धि दृश्यन्ते ते ते भावारतथा तथा ।" च.सू. 25/46

"तस्मात् स्वभावो निर्दिष्टस्तथा मात्रादिराश्रयः ।
तदपेक्ष्योभयं कर्म प्रयोज्यं सिद्धिमिच्छता ।।" च.सू. 25/47

"आहिताग्निः सदा पथ्यान्यन्तरग्नौ जुहोति यः ।
दिवसे दिवसे ब्रह्म जयत्यथ ददाति च ।।"

नरं निःश्रेयसे युक्तं सात्म्यज्ञं पानभोजने ।
भजन्ते नामयाः केचिद् भाविनोऽप्यन्तरादृते ।। च.सू. 27/46-47

अपथ्य आहार विहार भी प्रत्येक व्यक्ति की आयु शारीरिक अवस्था, प्रकृति, रोग द्रव्य की मात्रा, दूसरे द्रव्य के साथ संयोग आदि के अनुसार अलग अलग हो सकते हैं। जो पदार्थ एक व्यक्ति के लिए पथ्य या हितकर है, वही दूसरे के लिए भी पथ्य होगा, यह आवश्यक नहीं है।

वैसे कुछ पदार्थ स्वभाव से ही पथ्य (हितकर) होते है तो कुछ अपथ्य (अहितकर) होते है। इनकी सूची निम्नलिखित है :

3. उदाहरण

पदार्थो की श्रेणी	सबसे अधिक हितकर	सबसे अधिक अहितकर
1. शूक धान्य (कड़े छिलके वाले अनाज)	लाल शालि चावल	यवक
2. दालें	मूंग	उड़द
3. विभिन्न प्रकार के पीने योग्य जल	वर्षा का जल (भूमि पर गिरने से पहले)	वर्षा ऋतु में नदी का जल
4. लवण (नमक)	सेंधा नमक	ऊषर (नमकी से तैयार नमक)
5. शाक (साग)	जीवन्ती साग	सरसों का साग
6. घी	गाय का घी	भेड़ी का दूध
7. दूध	गाय का दूध	भेड़ी का दूध
8. कन्द और मूल	अदरख	आलू या गुड
9. फल	अंगूर	लकुच (बड़हल)
10. गन्ने से तैयार खाद्य पदार्थ	चीनी	फाणित
11. वनस्पति वसा	तिल तेल	कुसुम्भ का तेल

इनमें भी हितकारी पदार्थो का सेवन भी मात्रा, प्रकृति आदि अनुसार विधिपूर्वक न किया जाए तो वे भी अहितकर पदार्थो के समान ही हो सकते है अतः मात्रा, देश, आयु, ऋतु, आदि का भली प्रकार विचार अपने लिए पथ्य आहार और विहार को चुन लेना चाहिए। शरीर अन्न से ही बना है। अतः परीक्षा करके पथ्य आहार का सेवन करना चाहिए, लोभ अथवा अज्ञानता के कारण अपथ्य आहार का सेवन कभी भी नहीं करना चाहिए अन्यथा व्यक्ति रोगों का शिकार हो सकता है।

अनुपान एवं कुछ प्रमुख द्रव्यों के गुण कर्म

आयुर्वेद में अनुपान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'अनुपान'[450] शब्द का अर्थ है – (अनु+पान) भोजन, औषधि आदि के पश्चात् सेवन करने योग्य पेय पदार्थ। अनुपान रुचि को बढ़ाता है। उचित अनुपान के सेवन से पुष्टि शक्ति और वीर्य में वृद्धि होती है, ताजगी, प्रसन्नता एवं मृदुता प्राप्त होती है। इससे पाचक अग्नि तेज़ होती है, रंग में निखार आता है तथा मानसिक व शारीरिक थकान दूर होती है। उचित अनुपान सभी दोषों को शान्त करने के साथ-साथ रस, रक्त आदि धातुओं में भी दोषों को जमा नहीं होने देता।[451]

अनुपान के रूप में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख द्रव्य है–[452] जल, ठन्डा व उष्ण जल, आसव, यूष (सूप), खट्टे फलों का रस, धान्याम्ल (धान्य से तैयार कांजी, आदि खट्टे द्रव), काँजी दूध तथा फलों व औषधियों आदि का रस, काढ़ा आदि। अनुपान का चुनाव उसके गुण, दोष व रोगी की प्रकृति, आयु व रोग की दशा एवं समय को देख कर किया जाता है। इसका सेवन भी उचित मात्रा में करना चाहिए। उचित मात्रा मे प्रयोग करने से ही भोजन और औषधि आदि का पाचन सुविधा पूर्वक होता है अन्यथा अधिक मात्रा में लेने से जहाँ भारीपन और दोषों में वृद्धि होती है, वहीं कम मात्रा में या बिल्कुल नहीं लेने से भोजन आदि पदार्थो में मृदुता (मुलायमपन) न आने के कारण उनका पाचन ठीक प्रकार से नही हो पाता। इस प्रकार रोग उत्पन्न हो सकते है परन्तु कुछ विशेष अवस्था में सामान्य अनुपान लेने की मनाही होती है।[453] जैसे खाँसी, दमा, उर

---

450. "अनु पश्चात् सह वा पीयते इत्यनुपानम् ।
अल्पदोषमदोष वाऽप्यनुपानेन जीर्यति ।। अ.हृ.सू. 8/50

451. "अनुपानं हितं युक्तं तर्पयत्याशु मानवम् ।
सुखं पचति चाहारमायुषे च बलाय च ।।" च.सू. 27/326
"अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढाङ्गताम् ।
अन्नसङ्घातशैथिल्य विक्लित्तिजरणानि च ।।" अ.हृ.सू.

452. "अनुपानं हिमं वारि यवगोधूमयोर्हितम् ।
दध्नि मद्ये विषे क्षौद्रे कोष्णं पिष्टमयेषु तु ।।" अ.हृ.सू. 8/47-49
"शाकमुद्गादिविकृतौ मस्तुतक्राम्लकाञ्जिकम् ।
सुरा कृशानां पुष्ट्यर्थं स्थूलानां तु मधूदकम् ।।"

453. "वर्ज्यं तूर्ध्वजत्रुगदश्वासकासप्रसेक हिध्मास्वरभेदोरःक्षतिभिर्गीतभाष्यप्रसक्तैश्च ।।" अ.स.सू. 10/55

(छाती में घाव), बहुत अधिक लाला स्राव, सिर और गर्दन की बीमारियाँ एवं गला बैठने पर भोजन के साथ जल आदि अनुपान (पेय पदार्थ) लेना उचित नहीं है।

आयुर्वेद में कुछ रोगों और विशेष प्रकार के पदार्थो के साथ विशेष अनुपान लेने का उल्लेख किया है। आपकी जानकारी के लिए कुछ पदार्थो की सूची नीचे दी जा रही है –[454]

रोग/पदार्थ	अनुपान	रोग/पदार्थ	अनुपान
कफ का प्रकोप	रूक्ष और गर्म	असात्म्य (प्रतिकूल) भोजन	गर्म दूध
वायु का प्रकोप	स्निग्ध और गर्म	रक्तपित्त (शरीर से रक्तस्राव)	दूध/गन्ने का रस
पित्त का प्रकोप	मधुर और शीतल	विष/विषैला प्रभाव	हरड़, शेलु या शिरीष से बना
व्रत, उपवास, शारीरिक श्रम अधिक बोलने व चलने तथा अधिक मैथुन करने से उत्पन्न थकावट और कमज़ोरी	दूध	स्निग्घ पदार्थ (घी, तेल, आदि)	गर्म जल
		भिलावा तेल	ठण्डा जल
मद्य सेवन से दुर्बलता	मधूदक (शहद मिला जल)	शालि चावल, मूंग और इनसे बने पदार्थ	दूध
मोटापा		उड़द	दही/दही का पानी/कांजी
अनिद्रा		पीठी, पीठी से बने पदार्थ	तेल/यूष (सूप)/ खट्टी कांजी
तन्द्रा (सुस्ती)		शहद	जल
शोष		दही खीर पिष्टान्न (पेस्ट्री आदि)	ठण्डा या साधारण जल
चक्कर			
शारीरिक थकावट			
शीतल भोजन			
भारी भोजन			
अधिक भोजन			

454. "स्निग्धोष्णं मारुते शस्तं पित्ते मधुरशीतम् ।
कफेऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसः परम् ।" चरक सू. 27/321

अनुपानों में जल की प्रमुखता होने से तथा सब जगह आसानी से उपलब्ध होने के कारण सबसे पहले जल के विषय में आवश्यक जानकारी प्रस्तुत है।[455]

1. जल

शुद्ध जल अमृत के समान है। यह सभी प्राणियों का जीवन है क्योंकि जल के अभाव में प्राणी मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है। साधारण और स्वच्छ जल पित्त, विषैले प्रभाव, चक्कर, दाह (जलन), अपच, थकान बेहोशी, नशा (मदात्यय) और उलटी को दूर करता है तथा हृदय को बल प्रदान करता है। शीतल, उष्ण, उबले और उबाल कर ठण्डे हुए जल का गुण अलग अलग होता है। इन गुणों को दृष्टि में रख कर ही उसके अनुसार जल का प्रयोग करना चाहिए।[456]

♦ स्वच्छ और पीने योग्य जल :[457]

वर्षा का जो जल भूमि पर नहीं गिरा होता, सबसे अच्छा माना जाता है। भूमि पर गिरने के बाद इस जल में अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ मिल जाती है। जिस स्थान अथवा नदी में जाकर यह जल मिलता है, उसके अनुसार ही गुण व दोषों को अपना लेता है। चूंकि वर्षा का यह शुद्ध जल एकत्र करने की सुविधा नहीं होती अतः नल आदि से प्राप्त जल का ही सेवन करना उचित है। इस जल को यदि उबाल कर ठण्डा कर लिया जाए, तो यह भी वर्षा के दिव्य जल के समान गुणकारी होता है। उबालने से यह जल स्वच्छ हो जाता है। इस प्रकार का पानी वायु, पित्त और कफ आदि दोषों को शान्त करता है। यह पाचक, हलका और जठराग्नि को बढ़ाता है।

♦ जल सेवन का समय, मात्रा और विधि :

जल का सेवन भी उचित मात्रा, उचित ढंग से और उचित समय से करना चाहिए क्योंकि बहुत अधिक मात्रा में जल पीने से जाठराग्नि कमज़ोर होती है तथा भोजन का पाचन भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। इसके विपरीत यदि जल बहुत कम मात्रा में अथवा बिल्कुल न पिया जाए तो भी भोजन का पाचन नहीं हो पाता। इससे अनेक रोग भी उत्पन्न होते हैं क्योंकि जल की कमी से मल मूत्र पर्याप्त मात्रा में नहीं आता अतः शरीर से विषैले और हानिकारक तत्व बाहर नहीं निकल पाते। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए आयुर्वेद में निर्देश दिया गया है कि एक ही बार में अधिक मात्रा में जल न पीकर बार बार थोडी मात्रा में पीना चाहिए। इससे जाठराग्नि में भी वृद्धि होती है और शरीर में जल की आवश्यकता

---

455. "अनुपानं तु सलिलमेव श्रेष्ठं
सर्वरसयोनित्वात्सर्वभूतसात्म्यत्वाज्जीवनादिगुणयोगाच्च ।।" अ.स.सू. 10/42

456. "जीवनं तर्पणं हृद्यं ह्लादि बुद्धि प्रबोधनम् ।
तन्वव्यक्तरसं मृष्टं शीतं शुच्यमृतोपमम् ।।" अ.स.सू. 6/3

457. "खात्पतत्सोमवाय्वर्कैः स्पृष्टं कालानुवर्तिभिः ।
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्यथासन्नं महीगुणैः ।। च.सू. 27/197

की पूर्ति भी हो जाती है। अजीर्ण या अपच की स्थिति में जल औषधि का कार्य करता है। भोजन का पाचन होने पर जल पीने से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है।

भोजन करने से पहले जल पीने से अग्निमान्द्य (पाचन-शक्ति की दुर्बलता) होता है और शरीर दुर्बल होता है। भोजन के बीच में जल पीने से पाचन शक्ति और आयु में वृद्धि होती है। भोजन के एक घण्टे बाद जल पीने से शरीर पुष्ट होता है और मोटापा आता है। भोजन से पहले तो कभी जल का सेवन करना ही नहीं चाहिए। 'मोटे शरीर वाले को भोजन के बीच में' तथा पतले शरीर वाले को भोजन के एक घण्टे बाद जल पीना चाहिए। मोटे और ताकतवर मनुष्य के लिए जहाँ भोजन के बीच में जल पीना अमृत के समान है, वहीं अन्त में जल पीना बहुत हानिप्रद है।[458]

सामान्यत: जल का सेवन प्रत्येक मनुष्य के लिए हर अवस्था में लाभकारी है परन्तु कुछ विशेष रोगों में जल कम मात्रा में ही पीना चाहिए।[459] जैसे-अरुचि (भोजन करने की इच्छा न होना) पुराना जुकाम, अधिक लार निकलना, सूजन, क्षय रोग, पाचन-शक्ति की कमज़ोरी, उदर रोग (विशेषकर जलोदर), कोढ़ जैसी चमड़ी की बीमारियाँ, नेत्र-रोग, घाव और मधुमेह में। बिल्कुल जल न पीने से भी रोग उत्पन्न होने हैं। अलग स्थितियों में अलग-अलग प्रकार से जल का सेवन करना लाभकारी है। गर्म किया जल उपयोगी है, तो किसी दूसरी स्थिति में ठण्डा। इसी प्रकार कुछ रोगों में उबाला हुआ जल लाभ करता है, शीतल जल यदि मनुष्य के लिए अमृत के समान है, तो दूसरे के लिए हानिकारक भी हो सकता है। उदाहरण के लिए विदग्धाजीर्ण (अपच के साथ जलन भी होना) में जल पीने से जलन शान्त होने के साथ साथ भोजन का पाचन भी होता है परन्तु यदि यही ठण्डा जल खाँसी, दमा आदि के रोगी को पिलाया जाए तो कष्ट बढ़ जाता है। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए विभिन्न प्रकार के जलों में विशेषताओं को जान लेना उपयोगी रहेगा।

♦ भोजन के पश्चात् जल पीने का निषेध :

जो लोग वायु-प्रकोप से होने वाले सिर के रोगों, हिक्का (हिचकी) दमा (श्वास), खाँसी एवं टी. बी. से पीड़ित है, तथा जिन्हें ऊँची आवाज में

---

458. ''भक्तस्यादौ जलं पीतमग्निसादं कृशाग्ताम् ।। — अ.स.सू. 6/41
''अन्ते करोति स्थूलत्वमूर्ध्वं चामाशयात् कफम् ।।
मध्ये मध्याङ्गतां साम्यं धातूनां जरणं सुखम् ।।'' — अ.स.सू. 6/42

459. अनवस्थितदोषाग्नेर्व्याधिक्षीणबलस्य च ।
नाल्पमप्याममुदकं हितं तद्धि त्रिदोषकृत् ।। — अ.स.सू. 6/38
तेजसः प्रतिपक्षत्वान्मन्दाग्निर्वर्जयेज्जलम् ।
सर्वमेव तथा स्यन्दप्लीहविद्रधिगुल्मिनः ।। — सू. 6/39
पाण्डूदरातिसारा र्शोग्रहणीशोषशोफिनः ।
काममल्पमशक्तौ तु पेयमौषधसंस्कृतम् ।।'' — सू. 6/40

गाना, भाषण देना एवं अध्ययन करना पड़ता है, उन्हें भोजन के तुरन्त बाद जल का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि सिर के रोगों से पीड़ित होने पर जब मनुष्य भोजन के बाद जल पीता है, तो वह जल नीचे की ओर नहीं जाता। इससे वायु और अधिक कुपित होती है। सामान्य स्थिति में भोजन में पाये जाने वाले स्निग्ध पदार्थ वायु को शान्त करने में सहायक होते हैं, परन्तु जल पीने से उसके ठण्डे प्रभाव के कारण वायु कुपित हो जाती है। ऊँचे स्वर में गाने, भाषण देने और पढ़ने वालों के लिए इसका निषेध इसलिए है क्योंकि पीने के बाद जल गले और छाती में ही स्थित रह जाता है और वहाँ से भोजन के साथ लिये गये स्निग्ध पदार्थों को हटा देता है, जिससे गले आदि के रोग में वृद्धि होती है। कुछ विद्वानों का इस सन्दर्भ में यह कहना है कि भोजन के बाद जल पीने से भोजन में पोषक तत्वों का सात्मीकरण (assimilation - शरीर के तत्वों के अनुसार ग्रहण) नहीं हो पाता। ये तत्व गले और छाती में ही बचे रह जाते है, परिणामतः रोगों की उत्पत्ति होती है। इन कारणों से उपर्युक्त स्थितियों में भोजन के तुरन्त बाद जल नहीं पीना चाहिए।

♦ शीतल जल[460] :

शीतल जल का सेवन मूर्च्छा (बेहोशी), पित्त की अधिक जलन, विषैलापन, रक्त प्रकोप, नशा, चक्कर आना, उलटी होना, शारीरिक थकावट, तमक श्वास तथा रक्तपित्त (अर्थात् शरीर के अंगों से रक्त निकलना) जैसे रोगों में और भोजन के पाचन में लाभकारी होता है।

इसके विपरीत, निम्नलिखित परिस्थितियों में ठण्डा पानी पीने से रोग बढता है-पार्श्वशूल (पसली का दर्द), जुकाम, गले में दर्द और रुकावट, अफारा, मोतियाबिन्द, अरुचि, ग्रहणी के रोग पेट में गोला, दमा खाँसी, हिचकी, विद्रधि (बड़ा फोड़ा) तथा स्नेह (घी, तेल और घी तेल से बने पदार्थों का) सेवन के बाद।[461]

♦ गर्म जल[462]:

गर्म जल हलका होता है। यह पाचन शक्ति को बढ़ाता है तथा पाचन सम्बन्धी रोगों को दूर करता है। इस जल के पीने से (पीनस), पेट में अफारा, हिचकी आदि रोग तथा वायु और जल का प्रकोप शान्त होते हैं।

उबाला हुआ पानी स्वच्छ, सब दोषों से रहित

---

460. ''शीतं मदात्ययग्लानिमूर्च्छाच्छर्दिश्रमभ्रमान् ।
तृष्णोष्मदाहपित्तासृग्विषण्यम्बु च निहन्ति तत्'' अ.स.सूत्र 6/43

461. ''पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे ।।'' सु.सू. 45/29
''आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धे नवज्वरे।
हिक्कायां स्नेहपीते च शीताम्बु परिवर्जयेत् ।। सु.सू. 45/30

462. ''कफमेदोऽनिलमघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम् ।
श्वासकासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा''। सु.सू. 45/39
''क्षीणपादत्रिभागार्धं देशर्तुगुरूलाघवात् । क्वथितम्फेनरहितं वेगममलं हितम्''
''हिध्माऽऽध्मानानिलश्लेष्मतृद्कासश्वासपीनसे । पार्श्वशूलाममेदःसु सद्यःशुद्धौ नवज्वरे ।।''
''दीपनं पाचनंकण्ठ्यं लघु वस्तिविशोधनम् । अ.स.सू. 6/44-55

और अच्छा होता है। उबालते हुए जब जल का एक चौथाई भाग जल कर तीन चौथाई शेष रह जाता है, तो यह वायु और वायु से उत्पन्न रोगों को दूर करता है।

उबालने पर आधा बचा जल उष्ण जल कहलाता है। यह सदा लाभकारी होता है तथा त्रिदोष (वायु, पित्त और कफ) को, विशेषतः दोष व उससे उत्पन्न रोगों को दूर करता है। इस जल के सेवन से मूत्र शुद्ध होता है, तथा दमा, खाँसी, ज्वर एवं आम दोष दूर होते है। रात्रि के समय इस जल को पीने से जमा हुआ कफ पिघलता है तथा वायु एवं मल शीघ्र दूर होता है।

उबालने पर जब जल का केवल एक चौथाई भाग शेष रहता है तो वह 'आरोग्याम्बु' कहलाता है। यह भी सदा पथ्य, हलका, पाचक और जठराग्नि को बढ़ाने वाला है। गर्म आरोग्याम्बु के सेवन से दमा, खाँसी, कफ का प्रकोप, क़ब्ज़, पेट में अफारा, रक्त की कमी, शूल, बवासीर, गुल्म (पेट में गोला), बुखार, सूजन तथा पेट के दर्द में आराम मिलता है। गर्म आरोग्याम्बु पीने से पसली का दर्द, पेट में अधिक दर्द हिचकी, बहुत अधिक प्यास, आँव, शूल, अशुद्धि (उलटी, वमन, दस्त विरेचन) आदि के लिए की गई क्रियाओं का ठीक प्रकार न होना, बुखार की आरम्भिक अवस्था एवं वायु और कफ के प्रकोप दूर होते है। इससे मूत्र भी स्वच्छ होता है।

जब जल को उबाल कर ठण्डा कर लिया जाता है तो यह श्रृतशीत कहलाता है। यह जलन, दस्त, बेहोशी, नशा, विष, वमन, चक्कर, बहुत अधिक प्यास, पित्त और रक्त का दूषित होना, कफ और वायु से उत्पन्न रोगों, मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न रोगों तथा सन्निपात (तीनों दोषों का एक साथ कुपित होना) में बहुत लाभकारी है।[463]

जल को उबालने के पश्चात् यदि ढक कर ही ठण्डा कर लिया जाए, तो यह बहुत अधिक हलका होता है तथा अनाभिष्यन्दी (स्रोतों में रुकावट पैदा न करने वाला) होता है। इसके सेवन से वायु आदि तीनों दोष, पेट के कीड़े, बहुत अधिक प्यास और ज्वर दूर होते है।

जल को उबालने के बाद यदि एक बर्तन से दूसरे बर्तन में डाल कर ठण्डा किया जाता है, तो धाराशीत कहलाता हे। इस प्रकार करने से जल में वायु प्रविष्ट हो जाती है और वह भारी हो जाता है। इससे यह जल देर से हजम होता है और क़ब्ज़ करता है।

दिन में उबले हुए जल को भी यदि रात्रि भर पड़ा रहने दिया जाए अथवा रात्रि में उबले हुए जल को यदि दिन भर रखा जाए तो पाचन में भारी होता है और तीनों दोषों को कुपित करता है।[464]

42

463. मद्यपानात्समुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा ।।
''सन्निपातसमुत्वे च श्रृतशीतं प्रशस्यते । — सु.सू. 45/43
दाहातिसार पित्तासृङ्मूर्च्छामद्यविषर्तिषु ।।
श्रृतशीतं जलं शस्तं तृष्णाच्छर्दिभ्रमेषु च । — अ.स.सू. 6/48

464. ''तोयं बह्निगुणभ्रष्टं पाकेऽम्लं सर्वदोषकृत् ।।
भवेत् पर्युषितं तच्च –
''न च पर्युषितं देयं कदाचिद्वारि जानता । — सु.सू. 45/41
अम्लीभूतं कफोत्क्लेशि न हिंत तत् पिपासवे ।।''

♦ हंसोदक या अंशूदक[465]:

दिन के समय सूर्य की किरणों में तथा रात के समय चन्द्रमा की चाँदनी में रखा गया जल हंसोदक या अंशूदक कहलाता है। यह जल अमृत के समान उपयोगी होता है। इस प्रकार का जल स्निग्ध (चिकना) और तीनों दोषों को शान्त करता है। यह शक्ति और बुद्धि को बढ़ाने वाला, रसायन (बुढापे के विकारों को रोकने वाला), शीतल और पाचन में हलका होता है। यह जल अभिष्यन्दी (रसवह, रक्तवह, आदि स्रोतों को रोकने वाला) नहीं होता तथा सभी प्रकार के दोषों से रहित होता है।

♦ उष्णपान :

यदि प्रातः काल खाली पेट ही जल पी लिया जाए, तो इससे शरीर की झुर्रियाँ, सफेद बाल, गला बैठना, बिगड़ा जुकाम, दमा, क़ब्ज़ तथा शोष जैसे रोगों में आराम मिलता है।

♦ विभिन्न ऋतुओं में कौन सा जल उपयोगी है ?

ग्रीष्म और शरद् ऋतुओं में उबालने पर एक चौथाई बचा जल उपयोगी होता है। हेमन्त, शिशिर, वर्षा और बसन्त ऋतुओं में उबाल कर आधा शेष बचा हुआ जल उपयोगी होता है।

♦ जल के पाचन में लगने वाला समय :

बिना उबाला हुआ जल तीन घण्टे में, उबाल कर ठण्डा किया हुआ डेढ़ घण्टे में; तथा उबाल कर गर्म ही पिया गया जल तो 45 मिनट में पच जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जो जल उबालने के बाद गर्म ही पीया जाता है, वह सबसे हलका होता है। इसके विपरीत, बिना उबला जल सबसे भारी होता है। इस आधार पर अपनी अपनी पाचन शक्ति को देख कर जल का सेवन करना उचित है।

♦ दूषित जल की पहचान[466]:

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सदा स्वच्छ जल का सेवन करना चाहिए, दूषित जल का नहीं। जिस जल में मिट्टी कीचड़ काई, तिनके, पत्ते, जीव जन्तुओं व कीट पतंगों के मल-मूत्र, अण्डे व मच्छर, मक्खी तथा विषैले पदार्थ मिले हों, वह जल तो स्पष्ट रूप से दूषित है ही। इसके अतिरिक्त जो जल गन्दला या मैला हो, जिसमें किसी प्रकार की गन्ध, रंग तथा स्वाद पाया जाए एवं जिस जल में सूर्य और चन्द्रमा की किरणें न पड़ी हों, वह जल भी अशुद्ध या

---

465. ''दिवासूर्यांशुसन्तृप्तनिशिचन्द्रांशुशीतलम् ।
कालेन पक्वं निर्दोषमगस्त्येनाविषिकृतम् ।।''
''हंसोदकं इति ख्यातं शारदं विमलं शुचि ।
स्नानपानानवगाहेषु शस्यते तद्यथाऽमृतम् ।।'' — च.सूत्र 6/46-47
''दिवादिवाकरकरैर्निशाकरकरैर्निशि । सन्तप्तं ह्लादितं तोयमगस्त्येनाविषीकृतम्'' — अ.स.सूत्र 4/56
''नोर्ध्वाङ्गमारुताविष्टा न हिक्काश्वासकासिनः।
न गीतभाष्याध्ययनप्रसक्ता नोरसि क्षताः।।
पिबेयुरुदकं भुक्त्वा तद्धि कण्ठोरसि स्थितम्।
स्नेहमाहारजं हत्वा भूयो दोषाय कल्पते।।'' — चरकः सूत्र 27: 327-328

दूषित माना जाता है। बिना मौसम की वर्षा का तथा वर्षा के एकदम बाद भूमि पर से इकट्ठा किया गया जल दूषित होता है। इस प्रकार के जल का प्रयोग, पीने में तो क्या, नहाने के लिए भी नहीं करना चाहिए। जल के विभिन्न दोषों को निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

स्पर्श दोष :

छूने में खुद्दरा, रूखा, चिपचिपा, और गर्म, तथा पीने पर चिपकने वाला जल।

रूप दोष :

तिनके, पत्ते आदि विविध दूषित पदार्थो से युक्त तथा रंग वाला जल।

रस दोष :

किसी विशेष स्वाद वाला, जैसे - नमकीन जल आदि।

गन्ध दोष :

किसी प्रकार की दुर्गन्ध से युक्त जल।

वीर्य दोष :

देर से पचने वाला, पीने से अधिक प्यास, भारीपन और मुँह से लार टपकाने वाला जल।

इन दोषों वाले जल का सेवन करने से अनेक प्रकार के बाह्य रोग (जैसे-फोड़े, फुंसियाँ, खुजली, त्वचा का फटना आदि चर्म रोग) और आन्तरिक रोग (जैसे-जठराग्नि के रोग, कब्ज़, दस्त, उलटी, पेट में जलन आदि) उत्पन्न हो जाते हैं।

यदि स्वच्छ जल न मिल रहा हो और दूषित जल पीने की विवशता हो, तो इसे शुद्ध कर लेना चाहिए। शुद्ध करने के लिए जल को सूर्य की किरणों में रखना चाहिए। दूषित जल में स्वर्ण, चाँदी, पत्थर, रेत अथवा मिट्टी के ढेले को सात बार तपा तपा कर बुझाने से जल शुद्ध हो जाता है। फिल्टर या स्वच्छ और मोटे कपड़े से छान कर भी प्रयोग में लाया जा सकता है। इस तरह शुद्ध किये जल को ही प्रयोग में लाना चाहिए।[467]

---

466. कीटाहिमूत्रविट्कोथतृणजालोत्कटाविलम् ।
पंङ्कपंङ्कजशैवालहठर्णादिसंस्तृतम् ।।
सूर्येन्दुपवनादृष्टं जुष्टं च क्षुद्रजन्तुभिः ।
अभिवृष्टं विवर्णं च कलुषं स्थूलफेनिलम् ।।
विरसं गन्धवत् तप्तं दन्तग्राह्यतिशैत्यतः ।।
अनार्तवं च यद्दिव्यमार्तवं प्रथमं च यत् ।।
लूतादितन्तुविण्मूत्रविषसंश्लेषदूषितम् ।
तत्कुर्यात् स्नानपानाभ्यां तृष्णाऽऽध्मानोदरज्वरान् ।।
कासाग्निसादाभिष्यन्दकण्डूगण्डादिकानतः ।
तद्वर्जयेदभावे वा तोयस्यान्यस्य शस्यते ।। अ.स.सूत्र 6/21-25

467. पाषाणरूप्यमृद्धेमज तुतापार्कतापितम् ।।
पानीयमुष्णं शीतं वा त्रिदोषघ्नं तृडर्तिजित् ।
लघ्वरूक्षं क्लमघ्नं च तोयं क्वथितशीतलम् ।।
संसर्गे पित्तकफयोः सन्निपाते च शस्यते । अ.स.सूत्र 6/46-47

कुछ अन्य महत्वपूर्ण पदार्थ

इसके आगे कुछ अन्य पदार्थो के गुण कर्म आदि के बारे में बताया जा रहा है। इन पदार्थो का प्रयोग तो हम नित्य प्रति के जीवन में करते है परन्तु उनके विषय में कुछ जानकारी नहीं रखते कि वे हमारे लिए कितने उपयोगी है, उनका प्रयोग कब और किस प्रकार से करें ? आइए, इन तथ्यों को जान कर अपने लिए उपयोगी पदार्थो का सेवन करें और जो पदार्थ हमारे अनुकूल नहीं है उनका सेवन छोड़ दें अथवा उन्हें अनुकूल बना कर प्रयोग में लाएं।

2. कच्चे नारियल का जल[468]

साधारण जल के अलावा, प्रकृति ने हरे नारियल में भी जल भरा है। नारियल का पानी स्निग्ध, मधुर स्वाद वाला, ताकतवर, शीतल और पाचन में हलका होता है। यह अधिक प्यास (तृष्णा), पित्त, वायु एवं जिगर की गर्मी को दूर करता, पाचक-अग्नि को बढ़ाता, तथा मूत्र-प्रणाली के सभी अंगों को शुद्ध करता है। अतः सभी ऋतुओं में, विशेषकर, ग्रीष्म ऋतु में दूसरे ठण्डे पेय-पदार्थो (जैसी-पेप्सी, लिम्का, कोकाकोला, आदि) के स्थान पर इसका पान किया जाए, तो बहुत उपयोगी रहेगा।

जल के अतिरिक्त, हम लोग अपने दैनिक जीवन में दूध, दही, घी, तेल, आदि पदार्थो का भी सेवन नियमित रूप से करते हैं। इनके गुण-दोषों के बारे में ठीक ज्ञान न होने से अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ हो जाती हैं। अतः संक्षेप में इनके गुण-कर्मो का उल्लेख किया जा रहा है।

3. दूध[469]

दूध को अमृत माना जाता है। प्रायः सभी प्रकार के दूध मधुर रस (ऊँटनी का दूध नमकीन होता है), विपाक में मधुर, स्निग्ध, भारी, शीत वीर्य, वायु पित्तनाशक और कफ वर्धक होते हैं। दूध मेध्य (बुद्धि बढ़ाने वाला), वृष्य, बलदायक, पुष्टि देने वाला, धातुओं को बढ़ाने वाला और रसायन है। चूंकि इसमें ओज के सभी गुण पाये जाते है, अतः यह ओज को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त दूध जीवनीय (जीवन-शक्ति को बढ़ाने वाला), क़ब्ज़ दूर करने वाला, रक्त स्राव

---

468. "नारिकेलोदकं स्निग्धं स्वादु वृष्यं हिमंलघु ।
तृष्णापित्तानिलहरं दीपनं बस्तिशोधनम् ।।" — अ.स.सू. 6/51
"स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं बस्तिशोधनम् ।
वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नारिकेलोदकं गुरू ।।" — सु.सू. 45/44

469. "मधुरं पिच्छिलं शीतं स्निग्धं श्लक्ष्णं सरं मृदु ।
सर्वप्राणभृतां तस्मात् सात्म्यं क्षीरमिहोच्यते।। — सु.सू. 45/48
"प्रायशो मधुरं स्निधं शीतं स्तन्यं पयो मतम् ।।"
प्रीणनं बृहणं वृष्यं मेध्यं बल्यंमनस्करम् ।
जीवनीयं श्रमहरं श्वासकासनिबर्हणम् ।।

रोकने वाला, शरीर में स्निग्धता लाने वाला, गर्भ की स्थापना में सहायक, घावों को भरने के लिए उपयोगी, रंग को निखारने वाला, स्वर में वृद्धि करने वाला और जलन (दाह) को शान्त करने वाला होता है। यह क्षय (टी.बी.), पुराना बुखार, अम्लपित्त (हाइपर एसिडिटी) परिणाम शूल (खाने के बाद पेट में होने वाला दर्द), पेट के रोग, क़ब्ज़, शुक्र कमज़ोरी तथा शोष (शरीर का सूखना) आदि में भी लाभदायक है। यह बुढ़ापे में होने वाले विकारों को भी दूर करता है। दूध और घी को मिला कर निरन्तर सेवन करना बहुत अच्छा रसायन माना जाता है। सभी प्रकार के दूधों में गाय का दूध सबसे श्रेष्ठ और भेड़ी का दूध सबसे निकृष्ट (घटिया) माना गया है।

♦ गाय का दूध[470]

जैसा कि पहले बताया गया है, गाय का दूध सभी प्रकार के दूध में श्रेष्ठ माना गया है। यह जीवनीय (जीवनी शक्ति बढ़ाने वाला), रसायन (जरा के कुप्रभावों को दूर करने वाला), अनभिष्यन्दी (शरीर के स्रोतों में रुकावट न लाने वाला), मधुर, स्निग्ध, गुरु, शीतल, मेधा, बल और दूध को बढ़ाने वाला, रेचक, क्षतक्षीण (चोट, आदि से दुर्बल हुए) रोगी के लिए हितकारी है। यह थक कर चक्कर आना, मद (नशा), अलक्ष्मी (अशुभ), कास, अत्यधिक प्यास, पुराना बुखार, मूत्रकृच्छ् (मूत्र-त्याग में कठिनाई) और रक्तपित्त (शरीर के अंग से रक्त स्राव होना) को दूर करता है। यह वात और पित्त दोषों को शान्त करता है। गाय के रंग और संतति के अन्तर से इसके दूध के गुणों में भी अन्तर हो जाता है। जैसे-तरुणी (युवा) गाय का दूध मधुर, रसायन और तीनों दोषों को दूर करने वाला है, तो वृद्ध गाय का दूध दुर्बल माना गया है। इसी प्रकार काली गाय का दूध वायु दोष को दूर करने वाला और अधिक गुणकारी हो जाता है, तो पीली गाय का दूध पित्त और वायु को दूर करने वाला।

♦ भैंस का दूध[471]

भैंस का दूध गाय के दूध की अपेक्षा अधिक

हन्ति शोणित पित्तं च सन्धानं विहतस्य च । सर्वप्राणभृतां सात्म्यं शमनं शोधनं तथा ।।
तृष्णाघ्नं दीपनीयञ्च श्रेष्ठं क्षीणक्षतेषु च । पाण्डुरोगेऽम्लपित्ते च शोषे गुल्मे तथोदरे ।।
अतीसारे ज्वरे दाहे श्वयथौ च विशेषतः ।
योनिशुक्र प्रदोषेषु मूत्रेषु प्रदरेषु च ।। पुरीषे ग्रथिते पथ्यं वातपित्तविकारिणाम् ।
नस्यालेपाबगाहेषु वमनास्थापनेषु च ।।
विरेचने स्नेहने च पयः सर्वत्र युज्यते । च.सू. 1/108-112

470. अत्र गव्यं तु जीवनीयं रसायनम्।।
क्षतक्षीणहितं मेध्यं वर्ण्यं स्तन्यकरं सरम्।
श्रमभ्रमदालक्ष्मीश्वासकासातितृट्क्षुधः।।
जीर्ण ज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत्। अ.स.सू. 6/54-55
"स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरू मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः।।"
"तदेवंगुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्।
प्रवर जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्।।" च.सू. 27/217-18

शीतल, स्निग्ध (चिकना), गुरु (भारी) और अभिष्यन्दी (स्रोतों में रुकावट पैदा करने) होता है। यह 'तीक्ष्ण पाचक-अग्नि वालों के लिए' तथा अनिद्रा के रोगी के लिए बहुत उपयोगी है। भैंस का दूध नींद लाने के लिए सबसे अच्छी औषधि के रूप में माना गया है। इसमें गाय के दूध की अपेक्षा (घी) की मात्रा अधिक पाई जाती है, जबकि गाय के दूध में पाया जाने वाला घी गुणों की दृष्टि से अधिक अच्छा है।

♦ बकरी का दूध[472]

बकरी का दूध गाय और भैंस के दूध की अपेक्षा कम मात्रा में सेवन किया जाता है, परन्तु प्रयोग में लाया जाता है। यह दूध कसैलापन युक्त और मधुर (मीठा) होता है। यह शीतल, लघु (पाचन में हलका) और ग्राही है। बकरी का दूध अनेक प्रकार के रोगों में लाभकारी माना गया है, जैसे टी0बी0, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त (रक्तस्राव), कास (खांसी) शोष, विष नाशक है। यह पाचक-अग्नि को बढ़ाता है।

दूध को बिना जल डाले जितना अधिक पकाया जाता है उतना अधिक भारी और चिकना होता जाता है। यदि दूध में कुछ पानी डाल कर पानी जलने तक उबाला जाए, तो यह हलका हो जाता है।

उबालते समय दूध में पिप्पली, सोंठ (सूखा अदरक) मुलहठी व हल्दी डालने से यह कफकारी नहीं रहता।

प्रायः कच्चा दूध अभिष्यन्दी और भारी होता है, जबकि गाढ़ा दूध लघु और अनभिष्यन्दी होता है। वैसे गाय का दूध धारोष्ण (घोटने पर गर्म हो), भैंस का दूध धारा शीत (दोहने के बाद ठण्ड़ा) और बकरी का दूध श्रृतशीत (उबालकर ठण्डा किया गया) अच्छा माना जाता है।

प्रात:काल का दूध सायंकाल के दूध की अपेक्षा भारी व शीतल होता है। जो दिन में प्रायः विदाही (पाचन में दाह या जलन पैदा कर) अन्न का सेवन करते हैं उन्हें रात्रि को सोते समय दूध पीना चाहिए। ऐसा माना गया है कि जो मनुष्य उषाकाल (प्रात:समय) जल का, दिन में भोजन के बाद तक्र (लस्सी) का और रात को सोते समय दूध का सेवन करता है, वह निरोग रहता है।

जिस दूध का रंग, रस (स्वाद) या गन्ध बदल गया हो और फट गया हो वह दूध नहीं लेना चाहिए। दूध में या दूध के साथ नमक, अम्ल पदार्थ नहीं लेने चाहिए, क्योंकि ये विरुद्ध संयोग है। इसके सेवन से कुष्ठ जैसे रोग हो सकते है।

दूध की मलाई स्निग्ध, वायु और पित्त को शान्त करने वाली और वृष्य (शुक्र को बढ़ाने वाली।

---

471. "महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः।
स्नेहान्यूनमनिद्राय हितमत्यग्नये च तत्।।" — च.सू. 27/219
"हितमत्यग्न्यनिद्रेभ्यो गरीयो माहिषं हिमं।" — अ.स.सू. 6/56

472. "अल्पाम्बुपान व्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु।
आजं शोषज्वर श्वासरक्तपित्तातिसारजित्।।" — अ.स.सू. 6/57
"छागं कषायमधुरं शीतं ग्राहि पयो लघु।
रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम्।।" — च.सू. 27/222

होती है।

...ई गाय का दूध पीयूष - गुरु, अभिष्यन्दी और कफ बढ़ाने वाला होता है, तथा इसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है।

♦ खोया

भारी, स्निग्ध, बलकारक और वृष्य (शुक्र बढ़ाने वाला) होता है।

♦ छेना या पनीर

बलकारक और खोये से हलका होता है।

♦ छेना का पानी

बलकारक और मन्दाग्नि में लाभकारी है। एक छेना के पानी से 50 कैलोरी के बराबर शक्ति प्राप्त होती है।

4. दही[473]

दही भारी, स्निग्ध, अभिष्यन्दी (स्रोतों में रुकावट पैदा करने वाला), रस और विपाक में अम्ल, उष्णवीर्य, ग्राही (कब्ज़) वायु नाशक, रक्त, कफ-पित्त बढ़ाने वाला, दीपन (पाचन-शक्ति को बढ़ाने वाला), बलकारक, पौष्टिक और वृष्य (शुक्र बढ़ाने वाला) भोजन में रुचि बढ़ाने वाला होता है। उदर रोग (पेट के रोग), पीनस, विषम ज्वर, (मलेरिया), दुर्बलता, मूत्रकृच्छ् (मूत्रत्याग में कठिनता) और शीत (सर्दी से होने वाला) ज्वर में लाभकारी है। अधिक और विधिपूर्वक सेवन न किया गया दही सूजन, रक्त के रोग, ज्वर, रक्तपित्त और पीलिया रोग को उत्पन्न करता है।

♦ दही की मलाई

बलकारक, वृष्य (शुक्रवर्धक) और रक्तार्श (खूनी बवासीर) में लाभकारक है।

♦ दही का पानी (मस्तु)[474]

लघु, दीपन (पाचन-शक्ति बढ़ाने वाला), ग्राही (कब्ज़कारक), वायु का अनुलोमक, स्रोतों को शुद्ध करने वाला और मल-पदार्थो का अनुलोमन करने वाला है।

♦ मक्खन निकला दही

रूक्ष, विष्टम्भी (पेट में वायुकारक), ग्राही (कब्ज़) और वायु-वर्धक है, परन्तु ग्रहणी रोग में लाभकारी है।

---

473. "रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्धनम्।
पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं मङ्गल्यं बृहणं दधि।।"
"पीनसे चातिसारे च शीतके विषमज्वरे।
अरूचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्श्ये च दधि शस्यते।।" — चरक सूत्र 27/225-226
"अम्लपाकरसं ग्राहि गुरूष्णं दधि वातजित्।
मेदः शुक्रबलश्लेष्मरक्तपित्ताग्निशोफकृत्।।
रोचिष्णु शस्तमरूचौ शीतके विषमज्वरे।
पीनसे मूत्रकृच्छ्रे च रूक्षं तु ग्रहणीगदे।।" — अ.स.सू. 6/65-66, अ.स.सू. 6/71

474. "तद्वन्मस्तु सरं स्रोतःशोधि विष्टम्भजिल्लघु।"

♦ मन्द (पूरी तरह न जमा दही)

इसका सेवन नहीं करना चाहिए।

♦ सेवन की विधि[475]

दही को रात्रि में नहीं खाना चाहिए। दही का सेवन करते समय इसमें घी, शहद, चीनी, मूंग की दाल या आँवला- इनमें से कुछ न कुछ अवश्य मिला लेना चाहिए अर्थात् इन पदार्थों के बिना दही का सेवन नहीं करना चाहिए। दही को आग या धूप आदि में गरम करके तथा ग्रीष्म, बसन्त और शरद् ऋतुओं में नहीं खाना चाहिए। वर्षा, हेमन्त और शिशिर ऋतुओं में इसका सेवन किया जा सकता है।

5. तक्र[476]

तक्र को, दही में जल डाल कर अथवा बिना जल के मथ कर तैयार किया जाता है। दही के अनुसार तक्र भी मधुर (मीठा), खट्टा और बहुत खट्टा हो सकता है। इसमें जितनी मात्रा में जल मिलाया जाता है या स्नेह (घी) होता है उसके अनुसार ही इसके भेद होते हैं। बिना जल के केवल दही को मथ कर तैयार किया गया तक्र घोल, एक-चौथाई मिलाकर तैयार किया गया तक्र, तथा आधा जल मिलाकर तैयार किया उद्श्वित् कहलाता है। स्नेह (घी) निकाल कर केवल मथा गया दही मथित कहलाता है। घी निकले हुए दही में पर्याप्त मात्रा में जल मिलाने पर छाछ कहलाती है।

घोल	वायु और पित्त नाशक।
तक्र	तीनों दोषों का नाशक।
उदश्वित्	कफवर्धक।
मथित	कफ और पित्त शामक।
छाछ	लघु, शीतल, वात-पित्त नाशक और कफ कारक है। नमक मिला कर लेने पर यह पाचन-शक्ति को बढ़ाता है। पूरा घी निकाल कर तैयार किया गया तक्र बहुत हलका और पथ्य (हितकर) तथा कुछ भी नहीं निकाल कर तैयार किया तक्र बहुत भारी (गरिष्ठ), बलकारी और कफ कारक होता है।

475. नैवाद्यान्निशि नैवोष्णं वसन्तोष्णशरत्सु न।
नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं तत्राघृतसितोपलम्।।
न चानामलकं नापि नित्यं नो मन्दमन्यथा।
ज्वरासृकपित्तवीसर्पकुष्ठपाण्डुभ्रमप्रदम्।। अ.स.सू. 6/67-68

♦ तक्र के सामान्य गुण[477]

तक्र (मट्ठा) लघु, मधुर, अम्ल, कषाय, मधुरविपाक, कफ-वात नाशक, अग्निदीपक, स्रोतों को स्वच्छ करने वाला, ग्राही (कारक), हृद्य (हृदय के लिए लाभकारी), मूत्र अधिक लाने वाला और लेखन, ग्रहणी रोग, बवासीर, सूजन, पेट के रोग, मूत्र में रुकावट, प्लीहा (तिल्ली), गुल्म, घी से उत्पन्न रोगों (मेदोरोग), कृत्रिम विष और पाण्डु को दूर करता है। आधुनिक अनुसन्धानों के अनुसार भी तक्र मेदोरोग से उत्पन्न हृदय के रोगों को दूर करता है।

अपक्व तक्र, छाछ (मट्ठा) कोष्ठ में जमा कफ को तो नष्ट करता है, परन्तु गले में कफ को उत्पन्न करता है। अतः पीनस, खाँसी, दमा और गले के रोगों में ताजे तक्र का प्रयोग न करके पके तक्र को प्रयोग में लाना चाहिए।

कफ और वायु के रोगों में तक्र से बढ़ कर कोई औषधि नहीं कही गई है।

अलग-अलग अनुपानों के साथ तक्र के गुण भी अलग-अलग हो जाते हैं। जैसे-

अम्ल तक्र एवं सोंठ और सेंधा नमक	वायु-विकारों में लाभकारी
मधुर तक्र एवं चीनी	पित्त-विकारों में लाभकारी
तक्र एवं त्रिकटु (सोंठ, कालीमिर्च और पिप्पली) और यवक्षार	कफ-विकरों में लाभकारी
तक्र एवं हींग, जीरा और सेंधा नमक	वायु नाशक तथा बवासीर, अतिसार बस्ति (पेडू) में दर्द और अग्निमांद्य में उपयोगी
तक्र एवं गुड	मूत्रकृच्छ्र में लाभकारी
तक्र एवं चित्रक	पाण्डु रोग में लाभकारी

"न नक्तं दधि भुञ्जीत् न चाप्य घृतशर्करम्।
नामुद्गयूषं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना।।
ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठ पाण्ड्वयभ्रमान्।
प्राप्नुयात् कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः।।" च.सू. 7/61-62

476. "मन्थनादिपृथग्भूतस्नेहमर्द्धोदकं च यत्।
नातिसान्द्रद्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे।।" सु.सू. 45/85

477. "तक्रं लघु कषायाम्लं दीपनं कफवातजित्।
शोफोदरार्शोग्रहणीदोषमूत्रग्रहारूचीः।।"
गुल्मप्लीहघृतव्यापद्गरपाण्ड्वामयान् जयेत्। अ.स.सू. 6/69-70

478. "नैव तक्रं क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले।
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके।।" अ.स.सू. 6/70

खट्टा तक्र हानि पहुँचाता है। उर:क्षत (छाती में घाव) या दुर्बलता, मूर्च्छा, चक्कर, जलन और रक्तपित्त (रक्तस्राव) में एवं गर्मी के मौसम में तक्र का सेवन नहीं करना चाहिए।[478]

6. मक्खन[479]

मक्खन दो प्रकार का होता है- 1) दही से निकाला गया, और 2) दूध से निकाला गया, इसे नवनीत या नैनू कहते है।

दही से निकाला गया ताजा मक्खन मधुर, कषाय और विपाक में थोड़ा मधुर, लघु, स्निग्ध, शीतवीर्य, वायु-पित्त नाशक, वर्ण अग्नि को बढ़ाने वाला, संग्राही, वृष्य (शुक्रवर्धक), हृद्य (हृदय के लिए उपयोगी) और मेध्य (बुद्धिवर्धक)[480] है। यह क्षय, खाँसी, बवासीर और अर्दित रोग (लकवा) को नष्ट करता है। दूध से निकला हुआ मक्खन बहुत शीतल, चक्षुष्य (आँखों के लिए लाभकारी) संग्राही और रक्तपित्त नाशक है। अर्दित रोग में यह विशेष रूप से लाभ पहुँचाता है।

7. घी

सभी प्रकार के स्निग्ध (तैलीय-चिकने) पदार्थो में घी सबसे अच्छा माना गया है क्योंकि अन्य औषधियों के साथ पकाने में यह उनके बल को बढ़ा देता है। किसी दूसरे स्नेह (तेल, वसा, आदि) में यह गुण नहीं है।

सभी प्रकार के घी में गाय का घी सबसे उत्तम होता है।

घी गुरु, स्निग्ध, मधुर विपाक, शीतवीर्य, बुद्धि, स्मरण-शक्ति, मेधा, बल, आयु, पुष्टि, शुक्र, दृष्टि, सन्तान, कान्ति, सुकुमारता और स्वर में वृद्धि करने वाला होता है और अच्छा रसायन है। हृदय को ताकत देने वाला एवं वृद्धों के लिए भी लाभदायक है। घी मानसिक रोगों, ज्वर, दाह (जलन), उन्माद (पागलपन), क्षय, क्षतक्षीण (दुर्बल), शस्त्र के घाव और अग्नि से जलने पर भी लाभ पहुँचाता है वायु का अनुलोमन व पाचन-शक्ति को बढ़ाता है। स्रोतों

---

479. "शीतं स्वादु कषायाम्लं नवनीतम् नवोद्धतम्।
यक्ष्माऽर्शोर्दितपित्तासृग्वातजिद् ग्राहि दीपनम्।।
क्षीरोदभ्वं तु सङ्ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगजित्। अ.स.सू. 6/72

480. "स्नेहानामुत्तमम् शीतं वयसः स्थापनम् घृतम्।" अ.स.सूत्र 6/75
"सर्वस्नेहोत्तमम् शीतं मधुरं रसपाकयोः।
सहस्रवीर्य विधिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत्।।" च.सू. 27/232

481. शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निबिलायुः शुक्रचक्षुषाम्।
बालवृद्धप्रजाकान्तिसौकुमार्यस्वरार्थिनाम्।।
क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम्।
वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम्।। अ.स.सूत्र 6/73-74

से दोषों को निकाल कर उन्हें स्वच्छ करता है।[481]

घी का प्रयोग अनेकों प्रकार से, जैसे- पान करके, किसी औषधि में मिला कर व पका कर, मालिश, नस्य और अनुवासन बस्ति (एनिमा) के रूप में किया जा सकता है।

रक्तपित्त (रक्तस्राव होने पर) में घी का नस्य, पार्श्वशूल दर्द में पुराने घी की मालिश और कृशता (पतलापन), कमज़ोरी, उदावर्त, खाँसी, गर्भपात, पुराना ज्वर और तिमिर रोग में घी का सेवन (पान) अच्छा रहता है। दूध और घी का लगातार सेवन सभी रसायनों में श्रेष्ठ है।

दस वर्षों तक रखा घी पुराण, सौ वर्षों तक रखा घी कुम्भघृत और सौ वर्षों के बाद रखा घी महाघृत कहलाता है।

तेज गन्ध वाला होने पर भी पुराना घी अपस्मार (मिरगी), मद (नशा), मूर्च्छा, (बेहोशी), विषम ज्वर (मलेरिया), तिमिर, और सिर, कान, नेत्र व योनि (स्त्री के जनन अंग) के रोगों को नष्ट करता है। यह घाव को स्वच्छ करता व भरता है।[482]

8. तेल

स्नेह पदार्थो में घी के बाद तैल (तेल) का स्थान आता है। तैल शब्द तिल के तेल के लिए प्रयुक्त होता था, परन्तु बाद में सभी प्रकार के लिए इस शब्द (तैल) का प्रयोग होने लगा है।

तेल सामान्य रूप से मधुर, अनुरस में कषाय, उष्ण व्यवायी (जो पहले शरीर में फैलता है और बाद में पाचन होता है) (लेकिन कफ वर्धक नहीं) पित्त वर्धक, बल को बढ़ाने वाला, त्वचा के लिए लाभदायक होता है। मांस पेशियों को स्थिर, मज़बूत और पुष्ट करने वाला, मेधा को बढ़ाने वाला, दीपन (पाचन शक्ति को बढ़ाने वाला) और मल मूत्र को बाँधने वाला है। यह योनि मार्ग को शुद्ध करता है। वायु नाशक द्रव्यों में तेल सबसे उत्तम माना गया है। औषधियों द्वारा संस्कारित किये (पकाये) जाने पर तेल उन औषधि गुणों को भी अपने अन्दर ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार, यह सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करता है।[483]

शरीर पर तेल की मालिश करने से वायु का प्रकोप, थकान और बुढ़ापे के लक्षण दूर हाते है। दृष्टि निर्मल होती है, त्वचा, स्वच्छ, सुन्दर और कान्तिपूर्ण होती है, झुर्रियां नही पड़ती, शरीर पुष्ट होता है, नींद अच्छी आती है। सिर पर तेल

---

482. "पुराणं तिमिरश्वासपीनसज्वरकासनुत्।
मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्।।" सु.सू. 45/108
"पुराणं जयति व्याधीन् व्रणशोधनरोपणम्।
पूर्वान्क्तांश्चाधिकान् कुर्याद् गुणांस्तदमृतोपमम्।।" अ.स.सूत्र 6/77

483. वातघ्नेषूत्तमं बल्यं त्वच्यं मेधाग्निवर्धनम्।
तैलं संयोगसंस्कारात् सर्वरोगापहं मतम्।।
तैल प्रयोगादजरा निर्विकारा जितश्रमाः।
आसन्नतिबलाः संख्ये दैत्याधिपतयः पुरा।। च.सू. 27/287-288

की मालिश करने से सिर दर्द, गंजापन और कम अवस्था में बाल सफेद होना और बाल झड़ना आदि शिकायतें दूर होती है।[484]

जो तेल जिस पदार्थ से निकाला गया है, उसमें उसी पदार्थ के गुण पाये जाते हैं। मुख्यतः तिल, सरसों, नारियल अलसी के तेलों का प्रयोग किया जाता है।[485] इनके गुणों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है।

तेल में एक गुण यह भी पाया जाता है कि तेल जहाँ दुबले व्यक्ति का दुबलापन दूर करता है वहीं मोटे व्यक्ति का मोटापन भी दूर करता है। व्यवायी होने से तेल स्रोतों में बहुत जल्दी प्रवेश कर जाता है। दुर्बल व्यक्ति के स्रोत संकुचित होते है और तेल अपने लेखन एवं तीक्ष्ण (तीखापन) आदि गुणों से स्रोतों को तुरन्त खोल देता है।[486] इससे स्रोतों की सिकुड़न समाप्त होने से शरीर पुष्ट हो जाता है और कृशता (पतलापन) दूर हो जाती है दूसरी ओर सूक्ष्म होने के कारण मोटे व्यक्ति के स्रोतों में भी पहुंच कर चरबी कम करता है इससे मोटापा घट जाता है। आधुनिक दृष्टि से भी तेल में अतृप्त वसाम्ल पाया जाता है, जो मोटापे एवं उससे उत्पन्न मधुमेह, हृदय-रोग आदि में हानिकारक नही माना जाता।

इसी तरह, तेल क़ब्ज़कारक (ग्राही) और क़ब्ज़ दूर करने, दोनों प्रकार के गुणों वाला माना गया है क्योंकि मल (पुरीष) को तो यह बाँधता है और स्खलित मल को बाहर निकाल देता है।

♦ तिल का तेल :[487]

तेलों में तिल का तेल सबसे अच्छा माना जाता है। प्रयोग बाह्य रूप से (मालिश करके) और

---

484. अभ्यङ्गो वातहा पुष्टिस्वप्नदाढर्थ्यबृहत्वकृत्।
दग्धभग्नक्षतरूजाक्लम्श्रमजरापहः।।
रथाक्षचर्मघाटवद् भवन्त्यभ्यङ्गतो गुणाः।
स्पर्शनेऽभ्यधिको वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रयम्।।
त्वच्यश्च परमभ्यङ्गो यस्मात् तं शीलयेदतः।
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्।।
स केश्यः शीलितो मूर्ध्नि कपालेन्द्रियतर्पणः। अ.स.सूत्र 3/56-59

485. "तैलं स्वयोनिवत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायि च।
त्वग्दोषकृदचक्षुष्यं सूक्ष्मोष्णं कफकृन्न च।।" अ.स.सू. 6/99

486. "कृशानां बृहंणायालं स्थूलानां कर्शनाय च।
बद्धविटकं कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्वरोगजित्।।" अ.स.सू. 6/100

487. "तैलं त्वाग्नेयमुष्णं तीक्ष्णं मधुरं मधुरविपाकं बृहणं प्रीणनं व्यवायि सूक्ष्मं विशदं गुरू संर विकासि वृष्यं त्वक्प्रसादनं शोधनं मेधामार्दवमांस स्थैर्यवर्णबलकरं चक्षुष्यं बद्धमूत्रं लेखनं तिक्तकषायानुरसं पाचनमनिलबलासक्षयकरं क्रिमिघ्नमशितपित्तजननं योनिशिरः कर्णशूल प्रशमनम् गर्भाशयशोधानंञ्च,
तथा छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टच्युतमथितक्षतपिञ्चितभग्नस्फुटितक्षाराग्निदग्धविश्लिष्टदारिताभिहतदुर्भग्न मृगव्यालविदष्टप्रभृतिषु च परिषेकाभ्यङ्गावगाहादिषु तिल तैलं प्रशस्यते ।। सु.सू. 45/112
"तद्बस्तिषु च पानेषु नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ।
अन्नपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशान्तये ।।" सु.सू. 45/113

आन्तरिक रूप से (खाकर) खाद्य रूपों में किया जाता है। यह तीखा और व्यवायी (शरीर में तुरन्त फैलने वाला), भारी, बलकारक, स्थिरता प्रदान करने वाला, दस्त व वायु-कफ नाशक, ऊष्ण, स्पर्श में शीतल, पौष्टिक, लेखन, मल-मूत्र को बांधने वाला पाचन शक्तिवर्धक, बुद्धि बढ़ाने वाला, शरीर में हलकापन लाने वाला, गर्भाशय को शुद्ध करने वाला, घाव, प्रमेह रोग (मूत्र से सम्बन्धित रोग), योनि (स्त्री के जननांग) और मस्तक के दर्द, एवं कान के रोगों को नष्ट करने वाला है। खाने से यह त्वचा, बालों और नेत्रों के लिए हानिकारक है, परन्तु मालिश करने से त्वचा हृदय बालों ओर नेत्रों के लिए लाभकारी होता है। चोट, मोच, घाव, जले हुए स्थान और हड्डी टूटने आदि में भी यह उपयोगी है। इसका प्रयोग नस्य सिकाई, मालिश ओर कान में डालने के लिए भी किया जाता है। भोजन बनाने में भी इसका उपयोग होता है। इसकी एक विशेषता है कि स्निग्ध होते हुए भी यह कफ को नहीं बढ़ाता तथा मालिश करने से पित्त को शान्त करता है।

♦ सरसों का तेल :

कटु (स्पर्श और वीर्य में), उष्ण, तीक्ष्ण (तीखा), हलका, कफ-वायु और शुक्र नाश करने वाला, पित्त और रक्त को दूषित करने वाला, लेखन, पाचक, चकत्ते आदि चर्म रोगों, सिर और कान के रोगों तथा कृमि (कीड़ों) को नष्ट करने वाला है। प्लीहा (तिल्ली) की वृद्धि के लिए यह तेल उत्तम माना गया है।[488]

♦ मूंगफली का तेल :

यह उष्ण, गुरु (भारी), स्निग्ध, कफ-वायु नाशक, (दाह करने वाला) और पित्तवर्धक होता है। त्वचा पर इसकी मालिश करने से चिकना नहीं अपितु रूखापन आता है। आजकल भोजन को पकाने में इसका बहुत उपयोग किया जाता है।

♦ नारियल का तेल

दक्षिण भारत में घी के स्थान पर प्रायः इसका प्रयोग किया जाता है। यह भारी, शीतल वायु, पित्त नाशक, कफ-वर्धक और बालों के लिए हितकर होता है। बालों में लगाने के लिए नारियल का तेल उत्तम माना जाता है।

♦ अलसी का तेल[489]

यह तेल मधुर-अम्ल, उष्ण, विपाक में कटु, कफ, पित्त और रक्त को कुपित करने वाला, वायु-नाशक और त्वचा के रोगों को उत्पन्न करने वाला है।

---

488. ''कटूष्णं सार्षपं तैलं रक्तपित्तप्रदूषणम् ।
कफशुक्रानिलहरं कण्डूकोठविनाशनम् ।।'' — च.सू. 27/290
''कटूष्णं सार्षपं तीक्ष्णं कफशुक्रानिलापहम्।
लघुपित्तास्रकृत्काठकुष्ठाशौव्रणजन्तुजित्।। — अ.स.सू. 6

489. ''आतस्यं मधुराम्लं तु विपाके कटुकं तथा ।
उष्णवीर्यं हितं वाते रक्तपित्तप्रकोपणम् ।। — च.सू. 27/292
''उमाकुसुम्भजं सोष्णं त्वग्दोषकफपित्तकृत् । — अ.स.सू. 6/104

9. मधु या शहद

शहद अनेक प्रकार का होता है। यह पीलापन, लालिमा कालापन लिये भूरे रंग का होता है। सामान्यतः यह कषाय-मधुर रस वाला, शीत, रूक्ष, भारी तथा कफ, विष, रक्तपित्त, प्यास और हिक्का को नष्ट करने वाला, छेदी (जमे हुए कफ को टुकड़े-टुकड़े करके बाहर निकालने वाला), सन्धानीय (घाव के दोनों किनारों को जोड़ने वाला), प्रमेह, कुष्ठ, कृमि, वमन (उलटी), श्वास, कास और अतिसार को नष्ट करने वाला, वायु-वर्धक, घावों को भरने वाला और शुद्ध करने वाला होता है। कुछ विद्वान (सुश्रुत) इसे तीनों दोषों को शान्त करने वाला मानते है।[490]

नया शहद पुष्टि करने वाला, थोड़ी मात्रा में कफ को नष्ट करने वाला और सर (क़ब्ज़नाशक) है, तो पुराना बहुत लेखन, क़ब्ज़ चर्बी और मोटापा नष्ट करने वाला है। शहद अच्छा योगवाही है अर्थात जिन-जिन गुण वाले द्रव्यों के साथ मिला कर इसका प्रयोग किया जाता है, उसके गुणों से युक्त हो जाता है। अतः आयुर्वेदीय औषधियों में अनुपान के रूप में सबसे अधिक इसका प्रचलन है।

शहद और उष्णता का विरोध माना गया है। अतः इसका प्रयोग गर्म द्रव्यों के साथ, गर्मी के समय तथा गर्मी से उत्पन्न रोगों में नहीं करना परन्तु उलटी (वमन क्रिया) करने में उष्ण शहद का प्रयोग किया जा सकता है, वह शरीर से बाहर निकल जाता है, अतः विषैला प्रभाव उत्पन्न नहीं कर पाता।[491]

सम मात्रा में घी और शहद का सेवन निषेध किया गया है।

---

490. ''वातलं गुरू शीतं च रक्तपित्तकफापहम् ।
सन्धातृच्छेदनं रूक्षं कषायं मधुरं मधु ।।'' च.सू. 27/245

''चक्षुष्यं छेदि तृट्श्लेष्मविषाहिध्माऽस्रपित्तनुत् ।
कुष्ठमेहकृमिच्छर्दिश्वासकासातिसारजित् ।।
व्रणशोधनसन्धानरोपणं वातलं मधु ।
रूक्ष कषायमधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा ।।'' अ.स.सू. 6/91-92

491. ''हन्यान्मधूष्णमुष्णार्तमथवा सविषान्वयात् ।
गुरूरूक्षकषायत्वाच्छैत्याच्चाल्पं हितं मधु ।।'' च.सू. 27/246

''उष्णमुष्णार्तमुष्णे च युक्तं चोष्णैर्निहन्ति तत् ।
विषान्वयत्वेन विषपुष्पेभ्योऽपि यतो मधु ।।'' अ.स.सू. 6/93

विरुद्ध आहार एवं हितकारी संयोग

पिछले अध्याय में बताया गया है कि जिस प्रकार पथ्य या हित आहार के सेवन से स्वास्थ्य की रक्षा होती है और दोष अपनी सम अवस्था में बने रहते है, उसी प्रकार अपथ्य या अहित आहार के सेवन से स्वास्थ्य का नाश और दोषों का प्रकोप होता है। यह आहार भी अनेक प्रकार का हो सकता है। कुछ खाद्य–पदार्थ तो प्रकृति से दोषों का प्रकोप करने वाले, रोग कारक, भारी आदि होने से अपथ्य होते है, परन्तु कुछ प्राकृतिक रूप से और अकेले तो बहुत गुणकारी और स्वास्थ्य वर्धक होते है लेकिन जब इन्हीं पदार्थो को किसी अन्य खाद्य–पदार्थ के साथ अथवा किसी विशेष समय या ऋतु में अथवा किसी विशेष वस्तु में पका कर सेवन किया जाता है, तो ये लाभ के स्थान पर हानि पहुँचाते है और अनेक प्रकार के रोगों का कारण बनते है। ये विरुद्धाहार कहलाते है क्योंकि ये रस, रक्त आदि धातुओं को दूषित करते है और दोषों को प्रकुपित करते है परन्तु मलों को शरीर से बाहर नहीं निकालते। अनेक बार गम्भीर रोगों की उत्पत्ति का कोई साफ कारण दिखाई नहीं देता। वस्तुतः इस प्रकार के विरुद्धाहार का लगातार सेवन करते रहने से ये शरीर पर धीरे–धीरे दुष्प्रभाव डालते और धातुओं को दूषित करते रहते है। इनके परिणामस्वरूप कुष्ठ जैसे भयानक चर्म रोग, सफेद दाग, नपुंसकता, अन्धापन, पीनस, रक्ताल्पता, ग्रहणी, विसर्प, जलोदर, पेट की बीमारियाँ, मन्दाग्नि, विस्फोट, भगन्दर, मूर्च्छा, मद (नशा), शोथ, अम्लपित्त (एसिडिटी), ज्वर, गलग्रह, उन्माद (पागलपन), आम–विष, सन्तान में विकार और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो सकती है।

यह विरुद्धाहार अनेक प्रकार का है, जैसे –

1. **देश की दृष्टि से विरुद्धाहार** : जैसे– नमी–प्रधान स्थानों में नमी व स्निग्ध व शीतल शीत पदार्थो का सेवन।
2. **काल या मौसम की दृष्टि से विरुद्धाहार** : जैसे– शीतऋतु में शीतल, रुक्ष रस प्रधान एवं हलके (लघु) पदार्थो का सेवन।
3. **पाचक–अग्नि की दृष्टि से** : जैसे– मन्द अग्नि व्यक्ति के द्वारा भारी स्निग्ध, ठण्डे और मधुर रस वाले पदार्थो का सेवन।
4. **मात्रा की दृष्टि से** : जैसे– शहद और घी का समान मात्रा में सेवन करना।
5. **सात्म्य की दृष्टि से** : जैसे– प्रतिदिन चावल खाने के अभ्यासी व्यक्ति को गेंहूँ, जौ आदि का सेवन।
6. **दोषों की दृष्टि से** : जैसे– वायु–प्रकृति वाले मनुष्य द्वारा वायु वर्द्धक पदार्थ तथा कफ–प्रकृति वाले मनुष्य द्वारा कफ–वर्द्धक पदार्थो का सेवन।
7. **संस्कार या पाक की दृष्टि से** : जैसे– खट्टे पदार्थो को ताँबे के बर्तन में पका कर खाना।
8. **वीर्य की दृष्टि से** : शीतवीर्य पदार्थो को उष्ण वीर्य पदार्थो के साथ खाना, जैसे – शीतवीर्य संतरा, मौसम्मी, अनानास आदि को दूध, दही अथवा लस्सी के साथ सेवन करना।

9. **कोष्ठ की दृष्टि से** : क्रूर कोष्ठ (जिन मनुष्यों में मल-विसर्जन की क्रिया स्वभावतः कठिनाई से होती है या वायु के प्रकोप के कारण जो सख्त मल का त्याग करते है) के व्यक्तियों द्वारा, लघु, क़ब्ज़कारक व वायु वर्धक पदार्थों का तथा मृदु-कोष्ठ (जिनमें मल-विसर्जन की क्रिया सुविधा पूर्वक द्रव्य रूप में होता है) व्यक्तियों द्वारा भारी, अधिक शक्तिदायक और रेचक पदार्थों का एवं अधिक मात्रा में सेवन करना।

10. **शारीरिक अवस्था की दृष्टि से** : जैसे- अधिक चर्बी वाले अर्थात् मोटे व्यक्तियों द्वारा स्निग्ध पदार्थों (घी, मक्खन, तेल आदि) का तथा क्षीण (कृश = पतले) मनुष्यों द्वारा रूक्ष और हल्के (लघु) पदार्थों का सेवन।

11. **क्रम की दृष्टि से** : जैसे- नित्यकर्म (मल-मूत्र, स्नान आदि) से पहले खाना, भूख न लगने पर भी भोजन करना तथा अधिक भूख लगने पर भी भोजन न करना।

12. **निषेध की दृष्टि से** : कुछ विशेष पदार्थो के सेवन के बाद उनके कुप्रभाव से बचने के लिए किसी अन्य विशेष पदार्थ का सेवन अवश्य करना चाहिए या किसी पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए। इस नियम का उल्लंघन करना। जैसे- घी के बाद ठण्डे जल आदि पदार्थों का सेवन करना, (घी के बाद गर्म पदार्थ या द्रव लेना चाहिए) भोजन के पश्चात व्यायाम करना, गेहूँ, व जौ से बने पदार्थ के सेवन के पश्चात ठण्डा पानी न पीना इत्यदि।

13. **पकाने की दृष्टि से** : जैसे- दूषित ईंधन से पकाया अथवा ठीक प्रकार से न पकाया गया (कच्चा, बहुत पका या जला हुआ) भोजन।

14. **संयोग की दृष्टि से** : कुछ पदार्थो को एक-साथ या आपस में मिला कर खाना, जैसे खट्टे पदार्थों को दूध के साथ, दूध, तरबूज, खरबूजा या लवण युक्त पदार्थ का सेवन करना।

15. **रुचि की दृष्टि से** : अच्छे न लगने वाले भोजन को विवशता से तथा रुचिकर भोजन को भी अरुचि से खाना।

16. **गुणों (संपत्) की दृष्टि से** : रस रहित, उत्पन्न होकर नष्ट हुये रस वाले या विकार युक्त रस वाले द्रव्य का सेवन करना।

17. **विधि की दृष्टि से** : भोजन सम्बन्धी आचार संहिता का पालन न करते हुए आहार करना।

इन सभी प्रकार के विरूद्ध आहार के उदाहरण नीचे दिए जा रहे है :-

दूध और	दही, नमक, मूली, मूली के पत्ते, अन्य कच्चे सलाद, सहिजन, इमली, खरबूजा, बेलफल, नारियल, आम्रातक, आम्बड़ा, नींबू, निकुच, करौंदा, बेल, कमरख, जामुन, कैथ, पारावत, अनार, आँवला, गलगल, तोरई, गुड़ या गुड़ का हलवा, तिलकुट, कुलथी, उड़द, मोठ, निष्पाव, कंगु, वनक, सत्तू, तेल तथा अन्य प्रकार के खट्टे फल या खटाई, मछली

दही और	खीर, दूध, पनीर, गर्म पदार्थ, व गर्म भोजन, खरबूजा, ताड़ का फल
खीर और	खिचड़ी, कटहल, खटाई (दही, नीबू, आदि), सत्तू, शराब आदि।
शहद और	मकोय (काकमाची), घी और वर्षा का जल (समान मात्रा में), तेल, वसा, अंगूर, कमल का बीज, मूली, गर्म जल, गर्म दूध या अन्य गर्म पदार्थ, कुसुम्भ का साग, शार्कर (शर्करा से बना) और मैरेय (खजूर) से बना जातुक साग, पका निकुच (बड़हल)
शीतल जल और	घी, तेल, गर्म दूध या गर्म पदार्थ, तरबूज, अमरूद, खीरा, ककड़ी, मूंगफली, चिलगोजा
गर्म जल या पेय और	शहद, भिलावा
घी और	समान मात्रा में शहद, ठण्डा जल, पका हुआ निकुच (बड़हल)
खरबूजा और	लहसुन, दही, दूध, मूली के पत्ते
तरबूज और	ठण्डा पानी, पुदीना
चावल और	सिरका
पका निकुच (बड़हल) और	उड़द, गुड़, घी, शहद, दूध, दही
कमीला और	छाछ (छाछ में पकाया)
तिल का पेस्ट	उपोदिका (पोई को पकाकर)
क्षार	अधिक समय तक सेवन
नमक	अधिक मात्रा में अधिक समय तक
सरसों का तेल और	हारिद्र (छत्रक जाति का) साग
अंकुरित धान्य और (दालन, चने आदि)	कमल नाल
मकोय	पिप्पली एवं काली मिर्च, गुड़, शहद, मछली पके हुए बर्तन में, रातभर रखी मकोय की शाक
उड़द की दाल और	मूली
केला और	तक्र (मट्ठा)
घी	काँसे के बर्तन में दस दिन रखा
दूध+सुरा+खिचड़ी	इस प्रकार के विरूद्ध आहार के सेवन से शरीर के धातु और दोष असन्तुलित हो जाते है, अतः अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। अतः इन सबका विचार करके खाद्य पदार्थो का सेवन करना चाहिए।

हितकारी संयोग के उदाहरण

जिस प्रकार विरुद्धाहार के सेवन से हानि होती है और अनेक रोग उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है, उसी प्रकार कुछ ऐसे खाद्य पदार्थ भी है, जिन्हें आपस में मिलाकर खाने से अधिक लाभ होता है और उनका पाचन भी शीघ्र हो जाता है ये हितकारी संयोग कहे जा सकते है। यदि स्वादवश किसी एक पदार्थ का सेवन अति मात्रा मे कर लिया जाए, तो उससे अपच हो जाती है या कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है। ऐसी स्थिति मे भी इन हितकारी संयोगों के सेवन से अपच के कारण उत्पन्न विकार दूर हो जाते है।

ऐसे हितकारी खाद्य पदार्थो की सूची इस प्रकार है।

वस्तु का नाम	हितकारी संयोग (जिस वस्तु से पाचन होता है)	वस्तु का नाम	हितकारी संयोग (जिस वस्तु से पाचन होता है)
उडद	तक्र, खांड	दूध	मूंग का यूष (सूप)
चना	मूली	घी	जम्बीरी नींबू का रस
मूंग	ऑवला	गोतक्र (गौ के दूध से बना तक्र)	गुनगना मांड (मण्ड)
अरहर	कांजी	भैस का तक्र	सेधा नमक
कुलथी	तेल	भैस का दही	शंख की भस्म
गेंहूँ	ककड़ी	नारियल (खोपरा)	भात
मक्का	अजवायन	आम	दूध
कोदों (कोद्रव)	पिण्डालू	केला	घी
श्यामाक, नीवार, कांगनी, कोदों और मोठ	दही का पानी	नारंगी	गुड़
खिचड़ी	सेंधा नमक	बड़हल	केला
पिष्टान्न (पिट्ठी)	शीतल जल	जम्बीरी नींबू	नमक
उड़द की पिट्ठी से बने बड़े आदि	नीम की जड़	द्राक्षा (अंगूर, किशमिश), पिस्ता, अखरोट और बादाम	लौंग

वस्तु का नाम	हितकारी संयोग (जिस वस्तु से पाचन होता है)	वस्तु का नाम	हितकारी संयोग (जिस वस्तु से पाचन होता है)
पटोल, करेला, कद्दू और बाँस के अंकुर	पलाश के क्षार का पानी	क्षार	तक्र
		नमक	चावल की धोवन
		मिश्री	सोंठ
आलू	तण्डुलोदक (चावल का पानी)	गुड़	सोंठ और नागरमोथा
		ईख (गन्ना)	अदरक
सूरण (जिमींकन्द)	गुड़	रसाला (शिखरन)	त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली का चूर्ण)
पिण्डालू	कोदों		
कसेरु	सोंठ		

मुख्य रोग एवं उनके लिए श्रेष्ठ औषधियाँ

आयुर्वेद के ग्रन्थों में प्रत्येक रोग के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। इनकी चिकित्सा के लिए अनेकों औषधियों का उल्लेख भी मिलता है, जो अनेक द्रव्यों से मिला कर बनाई गई हैं। किसी विशेष रोग के लिए कोई एक औषधि-द्रव्य विशेष रूप से उपयोगी है, इसका उल्लेख भी ग्रन्थों में किया गया है। पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के लिए रोग और उसके लिए सर्वश्रेष्ठ औषधि-द्रव्यों की सूची नीचे दी जा रही है:

रोग	श्रेष्ठ द्रव्य
ज्वर (सभी प्रकार के)	नागर मोथा, पित्तपापड़ा
अधिक प्यास	तपाये गये मिट्टी के ढेले को पानी में बुझाकर उस पानी को पीना
वमन (उलटी)	खील (लाजा)
मूत्र-रोग	शिलाजीत
मधुमेह, प्रमेह	ऑवला, हल्दी
रक्त की कमी	गेहूं का जवारा
वायु, कफ	हरड़
जिगर व तिल्ली (प्लीहा) के रोग	पिप्पली
हड्डी का टूटना	लाख (लाक्षा)
विष	शिरीष (सिरस)
चर्बी और वायु की अधिकता	गूगल
घावों को भरने के लिए	गूगल, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, ऑवला)
रक्तपित्त (किसी अंग से रक्तस्राव), टी.बी., कुष्ठ (कोढ़), चर्म रोग	अडूसा (वासा)
अतिसार (दस्त) पेचिश	कुटज (कूड़ा)
बवासीर कष्टसाध्य चर्म रोग	वकायन (महानिम्ब)

रोग	श्रेष्ठ द्रव्य
विष- रोग, हृदय-रोग	मोती, अंजन
मोटापा	त्रिफला, रसांजन, अश्वगन्धा पत्ते
पेट में कीड़े व उनसे उत्पन्न रोग	वायविडंग
शोष (विशेषतः टी.बी. से उत्पन्न दुर्बलता)	बकरी का दूध, मक्खन
वातरक्त (Gout)	गिलोय, नागरमोथा
ग्रहणी	तक्र (मट्ठा)
कुष्ठ	खदिर (खैर) का रस
उन्माद (पागलपन)	गाय का पुराना घी
अपस्मार (मिर्गी)	ब्राह्मी
अनिद्रा (नींद न आना)	भैंस का दूध, जटामांसी
नाड़ी-संस्थान के रोग, वायु रोग	लहसुन
अर्दित (लकवा)	देसी खांड़ एवं मक्खन
उदर रोग (जलोदर, सहित पेट के दूसरे रोग)	ऊँटनी का दूध, अदरक, चित्रक
अजीर्ण (अपच), मूत्रकृच्छ्र (मूत्र त्यागने में परेशानी)	पाषाण भेद या गोखरू
श्वास (दमा), कास (खांसी)	कण्टकारी (कटेली)
सिर के रोग	नस्य
मुख के रोग	नस्य (नाक में औषधि डाल कर ऊपर की ओर खींचना) एवं कवल ग्रह
अंगों का सुन्न होना	स्वेदन (सिकाई)
नई विद्रधि (फोड़ा)	रक्त स्राव
नेत्र-रोग	नस्य और अंजन
पार्श्वशूल	पोखर मूल (पुष्करमूल)

रोग	श्रेष्ठ द्रव्य
थकान	स्नान
वायु के रोग	बस्ति (एनिमा), तेल
पित्त-रोग	विरेचन (दस्त), घी
कफ-रोग	वमन (उलटी), शहद
आयु की स्थिरता	ऑवला
दुःख सहन एवं स्थिरता लाने के लिए	व्यायाम
वातज रोग, विशेषकर सन्धिगत वात (जोड़ों में वायु के कारण दर्द)	रास्ना
क़ब्ज़	हरीतकी (हरड़)
बवासीर, शूल	चित्रक (चीता) की जड़
हिचकी, श्वास, खाँसी व छाती में दर्द	पोखरमूल (पुष्करमूल)
रक्तपित्त (रक्तस्राव) स्तम्भन	अनन्नास (अनानास)

कुछ आहार–विहार व औषधियाँ और उनका प्रभाव

आहार (विहार) औषधि	प्रमुख प्रभाव
सन्तुलित भोजन	जीवन में स्थिरता
जल का सेवन	शरीर में समताओं को लाता है
दूध	सर्वश्रेष्ठ शक्तिदायी
नमक	भोजन में स्वाद उत्पन्न करने वालों में श्रेष्ठ
खट्टे पदार्थ	अच्छा स्वाद बढ़ाने वाला

आहार (विहार) औषधि	प्रमुख प्रभाव
शहद	कफ-पित्त दोषों को शान्त करने वाला
घी	वात-पित्त दोषों को शान्त करने वाला
तिल का तेल	वात-कफ दोषों को शान्त करने वाला
वमन चिकित्सा	कफ को बाहर निकालने में श्रेष्ठ
विरेचन चिकित्सा	पित्त को बाहर निकालने में श्रेष्ठ
बस्ति चिकित्सा	वायु को बाहर निकालने में श्रेष्ठ
स्वेदन (सिकाई) चिकित्सा	शरीर में कोमलता लाने में श्रेष्ठ
शारीरिक व्यायाम	शरीर में दृढ़ता लाने में श्रेष्ठ
बकरी का दूध	क्षय और रक्तपित्त की शान्ति और दूध (स्तन्य) की मात्रा बढ़ाने में उत्तम
भैस का दूध	नींद बढ़ाने में श्रेष्ठ
गन्ना	मूत्र वर्द्धक
जौ	पुरीष (मल) वर्द्धक
जामुन	वायु-वर्द्धक
भेड़ का दूध	कफ-पित्त वर्द्धक
उड़द	कफ-पित्त वर्द्धक
कुलत्थ	अम्लपित्त (एसिडिटी)
मदनफल	वमन कारक
त्रिवृत (निशोथ)	विरेचन के लिए उत्तम
अमरूद	मृदु (हल्के) विरेचन के लिए
स्नुही (थूहर)	तीव्र (अधिक) विरेचन
अपामार्ग	सिर के कफ आदि दोषों को निकालना
ऑवला	रसायन

आहार (विहार) औषधि	प्रमुख प्रभाव
एरण्ड की जड़	पौरुषत्व की वृद्धि और प्रकुपित वात दोष शान्त करना
मुस्ता (नागरमोथा) श्योनाक	पाचन शक्ति की वृद्धि, वायु का अनुलोमन (नीचे की ओर गति) एवं स्तम्भन (दस्त आदि रोकना)
उदीच्य	शरीर में शीतलता, पाचन-शक्ति की वृद्धि वायु का अनुलोमन, उलटी और दस्त रोकना
बिल्व (बेल)	वात-कफ की शान्ति, पाचन- शक्ति वृद्धि, स्तम्भन
अतिविषा (अतीस)	वायु, पित्त, कफ तीनों दोषों की शान्ति, पाचन शक्ति की वृद्धि, वायु का अनुलोमन, स्तम्भन
कमल, उत्पल, कुमुद्	रक्तस्राव रोकना, स्तम्भन
दुरालभा	कफ-पित्त की शान्ति
प्रियंगु	तीव्र रक्तपित्त (रक्तस्राव) रोकना
कुटज (कूड़ा)	प्रकुपित कफ, पित्त और रक्त को शान्त व स्तम्भन
काश्मर्य (गम्भारी) पृश्निपर्णी,	रक्त-स्तम्भन को बढ़ाना (रक्त को रोके रखना) वायु- दोष की शान्ति और पाचन शक्ति एवं पौरुषत्व की वृद्धि
बला	वायु को शान्त करना, स्तम्भन एवं शारीरिक शक्ति को बढ़ाना
शालपर्णी	वायु आदि तीनों दोषों को शान्त करना वाजीकर
हींग	वायु-कफ को शान्त करना वायु का अनुलोमन (नीचे की ओर गति), पाचन शक्ति की वृद्धि, छेदन (बढ़े हुए मांस आदि को नष्ट करना)
अम्लवेत	वायु-कफ को शान्त करना, वायु का अनुलोमन करने वाला तथा पाचक

आहार (विहार) औषधि	प्रमुख प्रभाव
जौ की राख (यवक्षार)	बवासीर का उपचार, विरेचन और वायु का अनुलोमन
तक्र (मट्ठा) का नियमित सेवन	ग्रहणी, सूजन, बवासीर और स्नेह चिकित्सा के गलत प्रयोग से उत्पन्न रोगों की चिकित्सा में उपयोगी
दूध, घी का सेवन	उत्तम रसायन
घी एवं सत्तू समान मात्रा	पौरुषत्व में वृद्धि
तिल के तेल से कुल्ले	दाँत मजबूत, भोजन में अच्छे स्वाद की अनुभूति
चन्दन का लेप	शरीर की दुर्गन्ध और जलन दूर होना
रास्ना, अगरु का लेप	शरीर का ठण्डापन दूर होना
लामज्जक, उशीर	जलन अधिक पसीना, त्वचा रोग में
कुष्ठ (कूठ) की मालिश और पुल्टिस	वायु का शमन
मुलैठी	अच्छी दृष्टि, अच्छे वाल और अच्छे कंठ की प्राप्ति, पौरुषत्व की वृद्धि, घाव त्वचा के रंग में सुधार
ताज़ी वायु स्नान	मूर्च्छा दूर, नवजीवन की प्राप्ति, थकावट दूर करने वाला
पाचन शक्ति के अनुसार भोजन	पाचन शक्ति में वृद्धि
आवश्यकता से अधिक भोजन	भयंकर अजीर्ण (अपच) की उत्पत्ति
समय पर भोजन	स्वास्थ्य का रक्षक
भोजन के पचने से पहले पुनः भोजन	ग्रहणी में विकार
अनियमित भोजन	पाचन-शक्ति की अनियमितता

आहार (विहार) औषधि	प्रमुख प्रभाव
मल, मूत्र आदि वेगों को रोकना	सबसे अधिक स्वास्थ्य नाशक
मानसिक शान्ति	आरोग्य (निरोग रहने) का सबसे अच्छा उपाय
प्रसन्नता	सुख-कारक
उदासी (अप्रसन्नता)	पौरुष नाशक
शक्ति से अधिक परिश्रम	सबसे अधिक रोग-कारक और आयुविनाशक
ब्रह्मचर्य	आयु-वर्द्धक
व्यभिचार	आयु-नाशक
स्त्री के मासिक धर्म के दिनों में मैथुन	सबसे अधिक अपवित्र एवं रोगकारक कार्य
शोक	रोग वर्धक

शरीर की अवस्थाएं और रसायन–चिकित्सा

हमारे शास्त्रों ने मानव का जीवन 100 वर्ष का माना है। स्वस्थ और प्रसन्न जीवन के लिए निम्नलिखित दस गुणों को आवश्यक माना गया है:

1.	बाल्य	आयु की कोमलता
2.	वृद्धि	शरीर में वृद्धि
3.	छवि	कान्ति या तेज
4.	मेधा	विवेक या विचार की शक्ति
5.	त्वक्	त्वचा की कोमलता
6.	दृष्टि	देखने की शक्ति
7.	शुक्र	जीवन - शक्ति
8.	विक्रम	साहसिक कार्य करने की शक्ति
9.	बुद्धि	ज्ञान, उचित अनुचित विचार की शक्ति
10.	कर्मेन्द्रिय	कर्मेन्द्रियों (हाथ, पैर आदि) में कार्य करने की क्षमता

ऋषियों का मानना है कि इन गुणों के अभाव में मनुष्य का जीवन प्रसन्नता से युक्त नहीं हो सकता। परिणामत: उसका शरीर अनेक प्रकार के रोगों का शिकार होने लगता है।

मनुष्य के 100 वर्ष के जीवन को निम्नलिखित भागों में बाँटा गया है:

1. **बाल अथवा बाल्यावस्था** : जन्म से लेकर 16 वर्ष की आयु तक।
2. **मध्य अथवा यौवन अवस्था** : 17 से 60 वर्ष की आयु तक।

   इसे तीन भागों में बांटा गया है-

1. परिवर्तन काल	2. यौवन काल	3. सर्व सम्पूर्णता
(17 से 20 वर्ष आयु तक शरीर के सभी धातुओं में तेज़ी से वृद्धि)	(21 से 40 वर्ष तक सभी धातु और इन्द्रिय बल, शक्ति और वीर्य से भरपूर)	(41 से 60 वर्ष तक अधिक वृद्धि नहीं परन्तु पहले बल, शक्ति और वीर्य की स्थिरता)

3. **वृद्धावस्था** : 61 से 100 की आयु तक इस अवधि में शरीर की धातुओं का दिन प्रतिदिन शनैः - शनैः क्षय होता जाता है और अन्त में शरीर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

जैसा कि ऊपर बताया जा रहा है कि 41-60 वर्ष की आयु में स्थिरता रहती है अर्थात् इस अवधि में मनुष्य का स्वास्थ्य पहले की तरह बना रहता है लेकिन ऐसी स्थिति तभी बनी रह सकती है जब वह पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक और सन्तुलित भोजन के स्वस्थवृत का पालन करे तथा मानसिक चिन्ताओं और परेशानियों से बचा रहे। इसके साथ ही आयुर्वेद में बताई गई दिनचर्या, ऋतुचर्या आदि के अनुसार पथ्य-अपथ्य का समुचित पालन भी करता रहे अन्यथा वह अपने सामान्य स्वास्थ्य से भी हाथ धो बैठता है क्योंकि इस अवधि के दौरान शरीर के धातु-कोषों आदि में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती। थोड़ी सी भी असावधानी से स्वास्थ्य बिगड़ सकता है। सामान्यतः इस आयु में मनुष्य की विचारधारा और क्रियाएं अनेक क्षेत्रों में बिखरी रहती हैं। निर्णय लेने और समझ-बूझ की शक्ति तीव्र हो जाती है। इस तरह मानसिक विचारों और क्रिया क्षेत्र के विरुद्ध जाने से नींद पहले की भाँति स्थिर नहीं रह पाती। सम्भोग शक्ति की क्षमता कम हो जाती है। अतः अधिक सम्भोग करने से शारीरिक शक्ति का ह्रास होने लगता है। चेहरे व शरीर की त्वचा पर झुर्रियां दिखाई देना, बालों का सफेद होना, गंजापन आदि बुढ़ापे के लक्षण भी इस समय प्रकट होने लगते हैं। पाचन-शक्ति और भूख भी पहले की अपेक्षा कम हो जाती है अतः इसको ध्यान में रख कर ही भोजन आदि खाना चाहिए। अधिक धूप, ठण्ड, गर्मी या वर्षा आदि से व्यक्ति बीमार पड़ सकता है, अतः इस आयु में इनसे बच कर रहना चाहिए। इस अवधि की एक विशेषता यह भी है कि शरीर में वसा या चर्बी अधिक जमा होने लगती है। यह तत्व अधिकतर पेट, चेहरे, गर्दन एवं नितम्बों में जमा होने लगते हैं। यही कारण है कि इन अंगों में माँस अधिक मात्रा में बढ़ जाता है और व्यक्ति स्थूलकाय दीखने लगता है। यह लक्षण चयापचय क्रिया की कमज़ोरी को दर्शाता है।

स्पष्ट है कि धातुओं के पाचन से शरीर को जितनी ऊर्जा पहले मिलती थी, वह अब कम मात्रा में मिल रही है। इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए मनुष्य यदि अपना आचरण और खान-पान निर्धारित करे, तो 60 वर्ष की उम्र तक अपने स्वास्थ्य को बनाये रख सकता है।

60 वर्ष की आयु के बाद का समय तो मनुष्य के शरीर क्षय का समय है। बहुत प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति बुढ़ापे के लक्षणों से नहीं बच सकता। चयापचय की शक्ति तो निर्बल हो ही जाती है, इसके सम्पूर्ण शरीर में अवांछित तत्व (waste products) भी अधिक मात्रा में बनने व जमा होने लगते हैं। अच्छा और पैष्टिक आहार लेने और पथ्य आहार विहार के सेवन के बावजूद भी शरीर अधिकाधिक दुबला-पतला होने लगता है। दृष्टि में अनेक तरह के परिवर्तन आने लगते हैं। उनमें आवश्यकता से अधिक चूना जमा होने की क्रिया (calcification) होने लगती है। जोड़ों के भीतर दोनों हड्डियों के

किनारों के बीच पाया जाने वाला श्लेष्मल द्रव (Synovial fluid) भी सूखने लगता है। परिणामस्वरूप उनमें रूखापन और कठोरता आ जाती है, पहले जैसा लचीलापन नहीं रह जाता है। यही कारण है कि इस आयु में गठिया, सन्धि-शोथ (जोड़ों में सूजन), ग्रीवागत सन्धिवात (Cervical spondylitis) आदि अनेक प्रकार के रोगों का आक्रमण प्रायः हो जाता है। नाड़ी संस्थान (नर्वस सिस्टम) भी बहुत शिथिल हो जाता है, अतः ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर पाता। परिणामतः सुनने की व स्मरण की शक्ति भी कम हो जाती है। धमनियों में लचीलापन और कोमलता की स्थिति समाप्त होने लगती है। शरीर के महत्वपूर्ण अंग (जैसे- यकृत, गुर्दे, हृदय आदि) की कार्य शक्ति भी पहले की अपेक्षा कम हो जाती है। इन सब कारणों से उच्च रक्तचाप (high blood- pressure), अनिद्रा (Insomnia) प्रोस्टेट ग्रन्थि में वृद्धि आदि रोग भी आक्रमण कर देते हैं। अग्न्याशय (pancreas) ग्रन्थि के ठीक प्रकार से कार्य न करने के कारण मधुमेह (Diabetes) भी हो सकता है। दुर्भाग्यवश यदि कोई हड्डी टूट जाती है तो वह भी ठीक प्रकार से जुड़ नहीं पाती। आँखों के लेंन्स अपारदर्शी हो जाते हैं अर्थात् मोतियाबिन्द हो जाता है। जबड़े कमजोर होने से दाँत हिलने और गिरने लगते है संक्षेप में, इस आयु में व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से असमर्थ हो जाता है। इससे वह स्वयं अपने लिए, परिवार एवं राष्ट्र के लिए बोझ बन कर रह जाता है। उसका जीवन स्वयं उसके लिए भी नीरस हो जाता है।

इस तरह की दयनीय अवस्था में आयुर्वेद में वर्णित 'रसायन चिकित्सा' विशेष रूप ये उपयोगी सिद्ध होती है क्योंकि इस चिकित्सा का उद्देश्य है- शरीर में चयापचय क्रिया को समान्य बनाये रखना, जिससे धातु कोषों (tissue cells) की संख्या और शक्ति में वृद्धि होती है तथा ये कोष पुनः जीवनीय शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। रसायन चिकित्सा के प्रयोग से नाड़ी- संस्थान सबल बनता है। अंगों व सन्धियों में चिकनाहट, कोमलता और लचक बनी रहती है। मानसिक सन्तुलन स्थिर रहता है। यह चिकित्सा शरीर को वृद्ध अवस्था में होने वाले विकारों, दुष्प्रभावों और रोगों से छुटकारा प्रदान करती है। संक्षेप में हम कह सकते है कि जो औषधि या चिकित्सा शरीर को वृद्ध-अवस्था के विकारों और अन्य रोगों से बचाये रखती है, वह रसायन चिकित्सा कहलाती है।

इस चिकित्सा के प्रयोग से व्यक्ति पहले के समान ही आंखों से देख व कानों से सुन सकता है। चेहरे पर कान्ति बनी रहती है और त्वचा का रंग पहले जैसा ही रहता है। संक्षेप में रसायन चिकित्सा से ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की शक्ति बनी रहती है। मनुष्य एक प्रकार से जीवन भर युवा रहता है। शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार से बलशाली होता है। यह रसायन-चिकित्सा स्वस्थ और शक्तिसम्पन्न व्यक्तियों के समाज का निर्माण करने में सहायक सिद्ध होती है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस चिकित्सा का विशेष उपयोग और महत्व है।

रसायन चिकित्सा के प्रयोग का उचित समय

'रसायन-चिकित्सा' का मुख्य उद्देश्य वृद्धावस्था के कुप्रभावों और रोगों से मुक्त रखना है'। वृद्ध होने से पहले ही अर्थात् युवावस्था या प्रौढ़ावस्था से ही इस चिकित्सा का प्रयोग आरम्भ कर देना चाहिए। इस समय व्यक्ति की पाचन एवं चयापचय क्रियाएं समान्य रूप से कार्य कर रही होती है, अतः औषधि का पूरा लाभ प्राप्त होता है। रसायन-चिकित्सा का प्रयोग करने से पहले निम्नलिखित दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

1. शरीर की शुद्धि अर्थात् वमन् (उलटी), विरेचन (दस्त) आदि क्रिया का प्रयोग करके शरीर से मल-पदार्थों को बाहर निकालना अति आवश्यक है, शरीर की शुद्धि के बिना रसायन-चिकित्सा से पूरा लाभ नहीं मिल सकता है।
2. स्वस्थ चिन्तन और आचरण अर्थात् प्रयोगकर्ता को चाहिए कि वह ऐसा सोचे, बोले तथा आचरण करें जो एक अच्छे और स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक हो। इस प्रकार के चिन्तन और आचरण से शरीर पर औषधि के बिना भी रसायन का प्रभाव पड़ता है। उसका जीवन स्वस्थ और जीवन्त बनता है। रसायन सेवी का जीवन आचरण और दैनिक जीवन शुद्ध सात्विक और संयम पूर्ण होना चाहिए। उसको सभ्य सुसंस्कृत समाज में ही उठना-बैठना चाहिए।

◊ रसायन चिकित्सा के लिए उपयुक्त व्यक्ति

रसायन चिकित्सा के प्रयोग के लिए वही व्यक्ति योग्य माना जाता है, जिसमें उच्च चारित्रिक गुण पाये जाते हैं जैसे –

- व्यक्ति सत्य बोलने वाला तथा क्रोध न करने वाला हो।
- किसी दूसरे को दुःख न देने वाला हो।
- आवश्यकता से अधिक श्रम (थकावट) और तनाव से दूर रहे।
- मादक-द्रव्यों के सेवन और मैथुन से परहेज़ रखने वाला।
- हर स्थिति में सामान्य रहने वाला।
- स्पष्ट बोलने वाला।
- पवित्र मन्त्रों का जप करने वाला, स्वच्छ रहने वाला।
- सूझ-बूझ अर्थात् विवेक की शक्ति रखने वाला।
- दान और भिक्षा देने वाला तथा धार्मिक आचार विचार में निपुण।
- देवता, ब्राह्मण, गुरुजनों, वृद्धों और गौओं की सेवा सत्कार करने वाला।

- अहिंसा का आचरण करने वाला, दयालु और सदाचार से युक्त।
- नियमित रूप से दूध, घी का सेवन करने वाला।
- अहंकार और अभिमान से रहित आत्म-संयमी (मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाला), अपने से बड़ों, देवताओं और ईश्वर पर विश्वास रखने वाला, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मनोवृत्ति रखने वाला।
- धार्मिक तथा पवित्र पुस्तकों का अध्ययन करने वाला।
- किसी भी प्रकार के चारित्रिक दोष से रहित।
- पथ्य व हितकर पदार्थो का सेवन करने वाला, तथा देश, स्थान और ऋतु के अनुसार औषधि की मात्रा एवं सेवन-विधि का ज्ञान रखने वाला।

इन उपर्युक्त एवं इसी प्रकार के अन्य गुणों से युक्त व्यक्ति मानसिक रूप से भी शान्त और स्थिर होता है। अत: इससे उसे चिकित्सा के गुणों में वृद्धि होने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

प्रयोग विधि :

आयुर्वेद के अनुसार इस रसायन चिकित्सा को निम्नलिखित दो प्रकार से प्रयोग में लाया जा सकता है :-

1. **कुटी प्रावेशिक** : यह वह विधि है, जिसमें रसायन-चिकित्सा का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की कुटिया (Cottage) में ही सभी प्रकार के प्रबन्ध करके रहना होता है। इस प्रकार के प्रयोग में व्यक्ति अपने व सामान्य कार्य, व्यवहार, नौकरी इत्यादि नहीं कर सकता है।

   आज कल इसे चिकित्सालय के अन्तरंग विभाग (Indoor Department) में भरती होकर चिकित्सा कराये जाने के रूप में समझ सकते है।

2. **वातातपिक** : इस विधि में व्यक्ति अपने दैनिक और सामान्य कार्य व्यवहार करता हुआ ही रसायन- चिकित्सा का प्रयोग करता है। औषधि के सेवन के साथ-साथ पथ्य आहार-विहार का ही सेवन करना होता है।

सामान्य व्यक्ति के लिए दूसरे प्रकार की विधि ही उचित रहती है। इसे बहिरंग विभाग (Outdoor Department) में चिकित्सा करना कह सकते है।

♦ अपथ्य आहार विहार :

रसायन- चिकित्सा का प्रयोग करने वाले व्यक्ति को क्षार अम्ल व कटु पदार्थो, तेल, दूषित और बासी पदार्थो, खट्टी काँजी, नीवार, कोदों, अनाज, पनीर, दही तथा अधिक वसा वाले पदार्थो का सेवन नहीं करना तथा मैथुन, रात को अधिक समय तक जागना और चिन्ता, भय, शोक, क्रोध आदि मानसिक विकारों से दूर रहना चाहिए।

♦ रसायन औषधियाँ :

रसायन- चिकित्सा के लिए आयुर्वेद के ग्रन्थों में अनेकों औषधियों का उल्लेख है। इनमें ऑवला,

हरड़, बहेड़ा, गिलोय, ब्राह्मी, पुनर्नवा, मण्डूकपर्णी, मुलैठी, शंखपुष्पी और वायविडंग प्रमुख है। कुछ विषैले औषधि-द्रव्य इस दृष्टि से उपयोगी माने गये हैं, जैसे- भिलावा, वत्सनाभ आदि परन्तु इनका प्रयोग करने से पहले कुछ विशेष प्रक्रियाओं द्वारा इन्हें शुद्ध करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पारा, गन्धक, शिलाजीत और स्वर्ण जैसे खनिज-पदार्थो को भी रसायन के रूप में बहुतायत से प्रयोग में लाया जाता है। इन्हें भी प्रयोग में लाने से पहले अनेक प्रकार की विधियों से शुद्ध कर लिया जाता है। इन्हें इस योग्य बना लिया जाता है, जिससे ये शरीर के रस, रक्त आदि धातुओं में आसानी से घुल-मिल जाएँ और उनके अनुकूल बन जाएँ। शिलाजीत के अतिरिक्त अन्य शेष उपविष द्रव्यों का प्रयोग अकेले न करके शास्त्रीय योगों में डाल कर ही किया जाता है। रस-भस्मों का प्रयोग भी इसी प्रकार होता है।

प्रत्येक द्रव्य को रसायन के रूप में प्रयोग करने की विधि, समय, मात्रा, तैयार करने का तरीक़ा, प्रयोग के दौरान पथ्य और परहेज़ आदि अलग-अलग होते हैं जिनका वर्णन आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिलता है। अतः शास्त्रानुसार और योग्य चिकित्सक की देख-रेख में ही इनका प्रयोग करना चहिए।

इन स्वतन्त्र औषधि-द्रव्यों के अतिरिक्त अनेक द्रव्यों के मिश्रण से तैयार कुछ योग भी है, जिनका प्रयोग रसायन के रूप में किया जाता है, जैसे- ब्राह्म रसायन, च्यवनप्राश, आमलकी रसायन, त्रिफला रसायन आदि। इनमें 'च्यवन-प्राश' बहुत लोकप्रिय योग है। रसायन-चिकित्सा के रूप में इसका संक्षिप्त परिचय उपयोगी रहेगा।

♦ च्यवन-प्राश :

च्यवन-प्राश को औषधि के रूप में कम, परन्तु पौष्टिक आहार (टॉनिक) के रूप में अधिक माना जाता है।

मात्रा और प्रयोग विधि :

च्यवन-प्राश से रसायन का प्रभाव प्राप्त करने के लिए इसे दिन में दो बार खाली पेट में 2-2 बड़े चम्मच की मात्रा (कुल मात्रा 30 ग्राम) में सेवन करना चाहिए। इसके साथ गाय का दूध लेना चाहिए। एक छोटे चम्मच से शुरू करके धीरे-धीरे इसकी मात्रा बढ़ानी चाहिए। पूरा लाभ प्राप्त करने के लिए इसका सेवन लम्बे समय तक करना होता है। इसकी मात्रा और समय की अवधि प्रयोग करने वाले की आयु और उसकी शारीरिक व मानसिक अवस्था पर निर्भर करती है। यह औषधीय योग बिल्कुल विषैला नहीं है। अतः किसी प्रकार की भी हानि नहीं होती है। हाँ, यदि इसकी मात्रा एकदम बढ़ा दी जाए, तो कभी-कभी पाचन-शक्ति दुर्बल हो जाने से भूख कम हो जाती है।

♦ पथ्य और अपथ्य :

च्यवन-प्राश के साथ दूध और दूध से बने पदार्थो का तथा गाय के घी का सेवन करने से इसका औषधीय प्रभाव बढ़ जाता है, परन्तु जो कफ के रोगी है या जो स्थल काय (मोटे) है उनको दुध के साथ च्यवन-प्राश का सेवन नही करना चाहिए। इनमें खट्टे पदार्थो, जैसे- दही आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। पाचन शक्ति तीव्र होने पर, मोटापा न होने पर प्रयोगकर्ता को वसा युक्त एवं कार्बोहाइड्रेट्स वाले पदार्थो का सेवन भी अधिक मात्रा में

करना चाहिए। समुद्री नमक के स्थान पर सैन्धव नमक का प्रयोग औषधि के प्रभाव को बढ़ा देता है। रसायन के रूप में इसका तथा अन्य किसी औषधि का प्रयोग करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इससे अधिक और शीघ्र लाभ की प्राप्ति होती है।

च्यवन-प्राश का रसायन के रूप में प्रयोग करते हुए खट्टे पदार्थो का सेवन नहीं करना चाहिए। नमक का प्रयोग भी कम मात्रा में करना चाहिए। जहाँ तक हो सके प्रयोगकर्ता को चिन्ताओं और परेशानियों से स्वयं को दूर रखना चाहिए। मैथुन से परहेज करना लाभकारी होता है।

♦ रसायन के रूप में हरड़

हरड़ भी एक अच्छा रसायन-द्रव्य है। हरड़ का बीज निकाल कर फल को प्रयोग में लाया जाता है। इस फल का चूर्ण बनाकर निम्न प्रकार से प्रयोग में लाने से रसायन का लाभ प्राप्त होता है:

ऋतु	अनुपान
वर्षा	सेधा नमक
शरद्	चीनी
हेमन्त	सोंठ का चूर्ण
शिशिर	पिप्पली का चूर्ण
बसन्त	शहद
ग्रीष्म	गुड़

प्रत्येक ऋतु में एक छोटा चम्मच (5 ग्राम) हरड़ का चूर्ण समान मात्रा में (ऊपर लिखित अनुपानों के साथ) लेना चाहिए। रोगी के कोष्ठ के अनुसार हरड़ की मात्रा को कम या अधिक किया जा सकता है। इस प्रकार रसायन चिकित्सा मानव जाति के लिए आयुर्वेद की अनूठी देन है।

अन्य किसी भी चिकित्सा-पद्धति में इस प्रकार हानि रहित रसायन- चिकित्सा उपलब्ध नहीं है। इसका प्रयोग करके जहाँ मनुष्य स्वयं व्यक्तिगत रूप से पूर्णतः स्वस्थ और प्रसन्न रह सकता है, वहीं बुढ़ापे की समस्याओं से रहित सुन्दर और स्वस्थ समाज का भी निर्माण कर सकता है।

शारीरिक बल

शरीर के स्वास्थ्य और बल का अटूट सम्बन्ध है। शरीर के स्वस्थ रहने को ही दूसरे शब्दों में बलशाली शरीर कहा जा सकता है। छोटे से छोटे कार्य को करने के लिए भी बल की आवश्यकता होती है। बल अथवा शक्ति के बिना तो जीवन की विभिन्न समस्याओं का सामना करना तो दूर, सामान्य क्रियाओं को करना भी कठिन हो जाता है। अतः बल या शक्ति को शरीर का बहुत महत्वपूर्ण तत्व माना गया है।

किसी मनुष्य में कितना बल है, इसका अनुमान हम उसके शरीर को देख कर नहीं लगा सकते। एक मोटे शरीर वाले व्यक्ति में यह आवश्यक नहीं कि बल भी अधिक हो और इसलिए यह भी आवश्यक नहीं कि दुबले-पतले शरीर वाले में बल अथवा शक्ति की कमी हो। तो प्रश्न उठता है कि यह बल अथवा शक्ति क्या है? और मनुष्य में उसका अनुमान कैसे लगाया जा सकता है? इसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है:

♦ शक्ति अथवा बल क्या है?

शरीर में रस, रक्त आदि धातुओं का अन्तिम सार बल अथवा शक्ति कहलाता है। इसी शक्ति को ओज भी कहते हैं। बल के कारण ही मांसपेशियों में स्थिरता और पुष्टि आती है जिससे मनुष्य सभी कार्य साहसपूर्वक कर सकता है। स्वर (आवाज़) की गम्भीरता ओर त्वचा के रंग में निखार भी इसी ओज से प्राप्त किया जाता है। संक्षेप में, शरीर के बाहरी और आन्तरिक सभी अंग इसी बल के आधार पर ही अपने-अपने कार्य ठीक प्रकार से करने में समर्थ होते है इस बल का मूल आधार शरीर में पाये जाने वाले दो तत्व हैं, तेज और ओज। तेज और ओज क्या है? इनके बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करते हैं।

♦ ओज या ओजस्

यह शरीर का बहुत मूल्यवान तत्व है, जो जल महाभूत के गुण से भरपूर है, अतः सौम्य प्रकृति का है। यह स्निग्ध, शीतल, सफेद, द्रव व लचीला होता है। 'ओजस्' का आश्रय स्थान हृदय है। मनुष्य का जीवन इस तत्व के आश्रित है अर्थात् इसके आधार पर ही मनुष्य जीवित रहता है यह ओज पूरी तरह नष्ट हो जाए, तो व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

ओज रस, रक्त आदि सातों धातुओं का सार माना जाता है। चरक-संहिता के अनुसार, जिस प्रकार शहद की मक्खियाँ फूलों का सार ग्रहण करके शहद इकट्ठा करती है, उसी प्रकार शरीर में पाचक अग्नियाँ (पाचक या Enzymes) रस आदि धातुओं के सार से ओज को इकट्ठा करती है। यह लालिमा और पीलापन लिए हुए सफेद रंग का तत्व होता है। इसके गुण माने गये हैं - भारीपन, शीतलता, मृदुता, चिकनाहट गाढ़ापन (घनत्व), मधुरता, स्थिरता, चमकीलापन, चिपचिपाहट और श्वेतता (सफेदपन)। इसमें सभी छः रस पाये जाते हैं। ब्रह्माण्ड के समान ओज का निर्माण भी उष्ण (अग्नि) और शीतल (सोम या जल) दोनों प्रकार के गुणों के मेल से हुआ माना जाता है। इनमें सोम गुण वाला ओज सफेद तथा अग्नि

गुण वाला ओज पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है। अग्नि गुण वाला ओज उत्तम प्रकार का माना जाता है। शरीर में इसकी कुल मात्रा कम हो जाए, तो इससे व्यक्ति को बहुत कष्ट होता है और उसकी हालत चिन्ताजनक हो सकती है जबकि पीलापन लिए हुए लाल रंग वाले ओज की मात्रा कम हो जाए, तो रोगी की मृत्यु निश्चित है।

चूंकि कफ और ओजस के गुणों में समानता है, अतः जब शरीर में कफ अपनी स्वाभाविक अवस्था में होता है, तो यह ओज का निर्माण करता है इससे बल में वृद्धि होती है परन्तु जब यह कफ विकृत हो जाता है, तो यह शरीर का मल बन जाता है तथा अनेक रोगों को जन्म देता है।

यइ एक प्रकार का रक्षित बल है। इसे रोग प्रतिरोधक क्षमता (Immunity) भी कह सकते हैं। इस क्षमता या बल की सदैव रक्षा करनी चाहिए। यह क्षमता या बल ही व्याधि को नष्ट करने में सहायक होता है। बिना इस बल के औषधि रोग निवारण में अक्षम रहती है। जिस व्यक्ति का यह बल नष्ट हो जाता है वह अचिकित्स्य होता है।

"रक्षेद् बलं चापि नरस्य नित्यं तद्रक्षितं व्याधि बलं निहन्ति।"

सु. चि. 18/3

सम्प्रति जिस रोग को एड्स कहा जाता है वह यही ओज क्षय है।

तेज और ओज से बने बल को तीन भागों में बाँटा गया है - उत्तम, मध्यम और अधम। इस बल को दूसरे आधार पर भी निम्नलिखित प्रकार का माना गया है :-

1. **सहज बल** (Natural) - जो बल मनुष्य को उसकी प्रकृति से ही प्राप्त होता है। यह रस से उत्पन्न बल है, जो सबसे उत्तम प्रकार का है।
2. **कालकृत बल** (Periodic) - जो बल उम्र के अलग-अलग पड़ावों पर प्राप्त होता है।
3. **युक्तिकृत बल** (Acquired) - उचित खान-पान, आचार-व्यवहार और औषधियों के रस से प्राप्त बल।

♦ बलशाली व्यक्ति के लक्षण

जो व्यक्ति रोग से रहित है, जिसमें बुढ़ापे के लक्षण कम से कम अथवा नहीं पाये जाते; जो अपने कार्य को रुचि से एवं कुशलपूर्वक करता है, आध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान-विज्ञान से युक्त है तथा जिसका शरीर गठीला और हृष्ट-पुष्ट है, वह व्यक्ति बलशाली और स्वस्थ माना जाता है।

प्रश्न उठता है कि गठीला या हृष्ट-पुष्ट शरीर कौन सा माना जाए? जो मोटा है या जो हृष्ट-पुष्ट है? क्या पतले शरीर वाला स्वस्थ व्यक्ति हृष्ट-पुष्ट नहीं है? आदि-आदि। आयुर्वेद इन प्रश्नों का उत्तर देता हुआ कहता है- वह व्यक्ति जिसकी हड्डियाँ शरीर में उचित स्थान पर ठीक तरह से बँटी है, जिसके जोड़ अच्छी तरह से गठे हुए और स्थिर हैं, जिसके सभी अंगों में मांस समान रूप से बँटा है, जो बलयुक्त और कार्य करने में समर्थ है, वह हृष्ट-पुष्ट एवं संगठित शरीर वाला व्यक्ति माना जाता है। शारीरिक दृष्टि से इस प्रकार का व्यक्तित्व और इसमें पाया जाने वाला बल उत्तम प्रकार का माना जाता है। जिस

व्यक्ति का शरीर बहुत अधिक भारी है तथा कार्य करने का सामर्थ्य कुछ कम है, वह शारीरिक गठन और बल की दृष्टि से मध्यम प्रकार है। जिसका शरीर बिल्कुल भी गठित नहीं होता वह हीन बल या निम्न बल का माना जाता है।

इसके विपरीत, जो व्यक्ति बहुत अधिक रक्तस्राव, मृत्यु, दुर्घटना जैसी दुःखद और शोकपूर्ण घटनाओं एवं भयानक दृश्यों को देखकर मूर्च्छित हो जाए, अथवा किसी रोग का शिकार हो जाए अथवा मरणासन्न हो जाए वह मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार से दुर्बल माना जाता है। चाहे वह देखने में कितना ही सुगठित और बलशाली क्यों न हो।

♦ बल के विकार

शरीर में भारीपन या शिथिलता, आलस्य, अंगों का सुन्न होना, नींद, थकावट, कार्य करने की कम क्षमता, वायु से उत्पन्न सूजन, शरीर के मांस में कमी, बेहोशी आना, ग्लानि (ऐसा अनुभव होना जैसे शरीर कपड़े से ढका है), उदासीनता, जड़ता, व्यर्थ में बोलते रहना ये सब बल में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के विकार हैं।

बल में इस प्रकार के विकार आने पर रोगी के बल के अनुसार ही उसकी चिकित्सा की जानी चाहिए। उसे शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, दीन भावना आदि मानसिक विकारों और शारीरिक व्यायाम व सम्भोग से दूर रखना चाहिए। ऐसे रोगी को अपने शारीरिक बल का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। राजयक्ष्मा (टी.बी.) और पुराने बुखार में जो औषधि एवं आहार-विहार का सेवन आदि बताया जाता है उसका प्रयोग इस अवस्था में भी लाभकारी है। रसायन और वाजीकर (शुक्र बढ़ाने वाली) चिकित्सा के साथ-साथ वायु नाशक तेलों को भी प्रयोग में लाना चाहिए।

अत्यधिक मोटापा और दुबलापन

बल के विषय में विचार करते हुए देखा गया है कि जिन व्यक्तियों के शरीर के विभिन्न अंगों में मांस समान रूप से विभक्त तथा हड्डियाँ और उनके जोड़ भली प्रकार से बँटे हुए, गठित और स्थिर होते हैं एवं शरीर बलशाली होता है, वे व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से हृष्ट-पुष्ट और सबसे श्रेष्ठ माने जाते है। इसके विपरीत जिन व्यक्तियों का शरीर बहुत अधिक मोटा या बहुत अधिक पतला होता है वे विशेष रूप से देखने में तो भद्दे लगते ही हैं, बल की दृष्टि से भी हीन (कमज़ोर) होते हैं।

1. अतिस्थूल अथवा मोटे व्यक्ति की परिभाषा, निदान

जिन व्यक्तियों के नितम्ब, पेट और छाती में बहुत अधिक चर्बी और मांस जमा हो जाता है और ये अंग चलने पर हिलते रहते हैं अर्थात् गति करते रहते है, तथा शरीर की वृद्धि के हिसाब से जिनमें बल एवं उत्साह नहीं होता, वे अति स्थूल या बहुत मोटे माने जाते है।

ऐसे व्यक्तियों के शरीर के स्रोतों में चर्बी के जमा होने से रुकावट पैदा हो जाती है। इससे वायु विशेष रूप से कोष्ठ में गति करने लगती है और पाचक-अग्नि उत्तेजित हो जाती है। व्यक्ति जो कुछ भी खाता है, वह बहुत जल्दी पच जाता है और भूख बढ़ जाती है। भूख लगने पर यदि वह न खाये, तो अनेक प्रकार के भयंकर रोगों का शिकार हो सकता है। इस तरह उसके अन्दर पाचक-अग्नि के रूप में पित्त और वायु दोनों में विकार पैदा हो जाता है और शरीर में चर्बी ग़लत प्रकार से बढ़ने लगती है। इससे वायु के कारण से पैदा होने वाले अनेक प्रकार के भयंकर रोग पैदा हो जाते हैं।

बहुत मोटे व्यक्तियों की आयु (जीवन) अपेक्षाकृत कम और काम करने की क्षमता धीमी होती है। वे कमज़ोर होते है, पसीना अधिक आता है, भूख और प्यास अधिक लगती है, उनके शरीर से दुर्गन्ध आती है तथा सम्भोग करने में उन्हें कठिनाई होती है।

♦ कारण

मोटापे का प्रमुख कारण है- अधिक मात्रा में खाना, भारी, मीठे, ठण्डे और चिकने खाद्य-पदार्थों का सेवन, शारीरिक कार्य की कमी, सम्भोग न करना, दिन को सोना, बहुत अधिक प्रसन्न रहना, मानसिक शक्ति का अभाव तथा वंशानुगत (खानदानी) प्रभाव। इन सब कारणों से शरीर में दूसरी धातुओं (रस, रक्त आदि) की अपेक्षा चर्बी अधिक मात्रा में बढ़ती है। चर्बी के ढीलेपन, भारीपन और कोमलता के कारण उसके गति और कार्य करने की क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शुक्र की मात्रा कम होने से तथा शुक्रवह स्रोत में चर्बी के कारण रुकावट होने से मैथुन क्रिया करने में परेशानी होती है। चर्बी में विकार के कारण, अधिक पसीना आने से शरीर से अधिक दुर्गन्ध आती है। चूंकि धातु सन्तुलन बिगड़ जाता है अतः दुर्बलता आ जाती है।

चर्बी के साथ कफ मिला होता है तथा चर्बी

तरल और भारी होती है अत: मोटा व्यक्ति शारीरिक श्रम को सहन नहीं कर सकता। इससे शरीर में पसीना भी बहुत आता है। पाचन शक्ति के तेज़ होने से तथा शरीर में वायु की अधिक मात्रा में होने से मोटे व्यक्ति को भूख और प्यास भी अधिक लगती है।

2. अतिकृश अथवा पतले व्यक्ति–परिभाषा, लक्षण

अत्यधिक पतले (दुर्बल) व्यक्ति के शरीर में नितम्ब, पेट और गर्दन एकदम सूखे हुए (पतले) होते हैं। उसकी त्वचा पर धमनियों का जाल सा बिछा दिखाई देता है। उसकी हड्डियों के जोड़ सर्वदा स्पष्ट नजर आते हैं। ऐसा व्यक्ति हड्डियों और चमड़ी का ढाँचा प्रतीत होता है।

बहुत पतले व्यक्ति में इतनी शक्ति नहीं होती कि अधिक शारीरिक श्रम, अधिक मात्रा में भोजन, भूख, प्यास, रोग, कष्ट और औषधियों के प्रभाव को सहन कर सके। वह अधिक सर्दी या अधिक गर्मी को सहन नहीं कर सकता और न ही अधिक सम्भोग कर सकता है। इस प्रकार के दुर्बल व्यक्ति अधिकतर तिल्ली, खाँसी, साँस फूलना, गुल्म, बवासीर तथा पेट व छाती आँत के रोगों से पीड़ित रहते हैं।

♦ अतिकृशता के कारण

अधिक पतलेपन के मुख्य कारण है- रूखा खान–पान, उपवास, कम मात्रा में खाना, शोक, चिन्ता, क्रोध करना, स्वाभाविक वेगों को रोकना, कम सोना, अधिक स्नान करना, वमन- विरेचन आदि संशोधन चिकित्सा की अधिकता, रूक्ष द्रव्यों से उबटन, बुढ़ापा, वंश गत प्रभाव और ज्यादातर रोग ग्रस्त रहना।

3. अतिकृशता की अपेक्षा अतिस्थूलता अधिक हानिकर

जैसा कि उल्लेख किया गया है- अधिक मोटापा व अधिक दुबलापन, दोनों ही अवस्थाएँ हानिकारक है क्योंकि दोनों प्रकार के व्यक्ति किसी न किसी रोग से पीड़ित रहते है और दोनों को ही उपचार की एक जैसी आवश्यकता होती है परन्तु इन दोनों में मोटापे की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक बुरी होती है। कारण, रोग होने पर मोटे व्यक्ति को अधिक कष्ट होता है तथा मोटे व्यक्ति की चिकित्सा भी पतले की अपेक्षा अधिक कठिन होती है क्योंकि ऐसे व्यक्ति के लिए इस प्रकार की चिकित्सा होनी चाहिए, जो (चर्बी), पाचक–अग्नि और वायु को नष्ट करे परन्तु बृहण प्रकार की चिकित्सा करने से जहाँ पाचक–अग्नि और वायु शान्त होते है, वहीं चर्बी बढ़ जाती है। इसके विपरीत, लंघन (दुर्बल करने वाली) चिकित्सा करने से चर्बी तो घटती है, परन्तु पाचक–अग्नि और वायु की वृद्धि होती है। दूसरे शब्दों में, बृहंण चिकित्सा करने से मोटे व्यक्ति में मोटापा और अधिक बढ़ता है, और लंघन चिकित्सा करने पर उसकी पाचन-शक्ति तेज़ होने के कारण वह उसको सहन नहीं कर पाता।

4. अतिस्थूलता और अतिकृशता के लिए संक्षिप्त चिकित्सा सूत्र

अतिस्थूलता या मोटापे के लिए - गुरु और अपतर्पण पदार्थ

अतिकृशता या दुबलेपन के लिए - लघु और सन्तर्पण पदार्थ

मोटे व्यक्ति में भारीपन वाले पदार्थ पाचक अग्नि को शान्त करते है, तो अपतर्पण गुण के कारण ऐसे चर्बी को कम करने में सहायक होते हैं। शहद, जौ में ये दोनों गुण पाये जाते हैं। लघु और अपतर्पण करने वाले पदार्थो (जैसे- प्रियंगु, शालक) को अन्य द्रव्य मिला कर भारी (गुरु) भी बनाया जा सकता है और स्थूल व्यक्ति को दिया जा सकता है। जैसे- जौ, गेंहूँ आदि को तेल, तक्र आदि मिला कर पकाने से ये स्थूल व्यक्ति के लिए उपयोगी हो जाते हैं।

इसी प्रकार पतले व्यक्ति को लघु और सन्तर्पण (बल बढ़ाने वाले) पदार्थ देने से उसके शरीर की वृद्धि भी होती है और उसकी जठराग्नि भी तेज़ होती है और सन्तर्पण होने से वे शरीर को पुष्टि भी प्रदान करते हैं। शालि धान्य साठी आदि इसके अच्छे उदाहरण है। दुर्बल व्यक्ति को गुरु (भारी) एवं पौष्टिक पदार्थ भी दिये जा सकते है परन्तु संस्कार (पकाने की विधि) द्वारा उन्हें हलका बना कर। जैसे-हीग, अजवायन, सोंठ आदि मिला कर भारी पदार्थो को हलका बनाया जा सकता है। इसी प्रकार जौ या गेंहू को घी, दूध आदि के साथ पकाया जाए, तो ये पौष्टिक हो जाएंगे और कृश व्यक्ति के लिए भी उपयोगी रहेंगे।

♦ अतिस्थूलता के लिए चिकित्सा

स्थूलता अथवा मोटापे को दूर करने के लिए लंघन अथवा अपतर्पण चिकित्सा की जानी चाहिए। लंघन चिकित्सा वह चिकित्सा है जो शरीर में लघुता (हलकापन) लाती है तथा जिससे शरीर में चर्बी की कमी होने से वज़न कम होता है। इस चिकित्सा में प्रयोग की जाने वाली औषधियों, आहार और साधनों में तेजस (अग्नि), वायु और आकाश महाभूत की प्रधानता होती है।

इस आधार पर लंघन के लिए लघु, उष्ण, चिपचिपाहट से रहित शुष्क (सूखी), रूक्ष (रूखी), सूक्ष्म, तरल तथा कठोर औषध-द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार की चिकित्सा के लिए निम्नलिखित उपायों का प्रयोग किया जा सकता है-

1) संशोधन चिकित्सा - वमन (उलटी), विरेचन (दस्त), एनिमा, नस्य (नाक में औषधियाँ डाल कर) द्वारा शरीर में जमा दोषों मलों को बाहर निकालना।
2) उपवास - कम मात्रा में और हलका भोजन करना।
3) प्यास पर नियन्त्रण करना।
4) हवा और धूप का सेवन।
5) शारीरिक व्यायाम
6) पाचक औषधियों का सेवन करना।

लंघन चिकित्सा के अतिरिक्त, निम्न प्रकार की चिकित्सा का प्रयोग भी स्थूलता को दूर करने के लिए किया जाना चाहिए।

1. वायु, कफ और चर्बी को नष्ट करने वाले खान-पान का प्रयोग,
2. रूक्ष और गर्म द्रव्यों के साथ एनिमा,
3. द्रव्यों से उबटन लगाना,
4. गिलोय, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा और आँवला का सेवन,
5. तक्रारिष्ट का सेवन,
6. ठण्डे जल में सुबह-शाम एक-एक चम्मच शहद का सेवन,
7. वायविडंग, सोंठ, यवक्षार और तीक्ष्ण लौह की भस्म समान मात्रा में लेकर शहद और आँवले के चूर्ण में मिला कर चाटना,
8. शिलाजीत का सेवन,
9. बिल्वादि पंचमूल, रसाञ्जन, गूगल या शहद के साथ अग्निमन्थ का रस पीना,
10. प्रशीतिका, प्रियंगु, श्यामाक, यवक, जौ, जूर्णाह्व, (ज्वार) कोद्रव (कोदों), मूंग और अरहर को पटोल और आँवले के साथ भोजन के रूप में खाना और ऊपर से शहद मिला हुआ ठण्डा पानी पीना,
11. अधिक जागना, अधिक सम्भोग और अधिक मात्रा में शारीरिक एवं मानसिक कार्य करना तथा चिन्ता करना, इन उपायों से मोटापा कम होता है भले ही शरीर और स्वास्थ्य भी बिगड़ता हो,
12. त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च और पिप्पली), कुटकी, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा और आंवला), सहजन, वायविडंग, अतीस, शालपर्णी, सौवर्चल, जीरा, अजवायन, धनिया, चित्रक, हल्दी, दारुहल्दी, कटेरी, बड़ी कटेरी, हीबेर (हाऊबेर), पाठा, केम्बुक- ये सब समान मात्रा में मिलाकर चूर्ण बनाकर दो से पांच ग्राम की मात्रा में गर्म जल के साथ प्रातः-सायं सेवन करना।

इन सब साधनों से मोटापा दूर होता है। मोटापे के अतिरिक्त उसी प्रकार के दूसरे रोग जैसे- हृदय रोग, क्षय, खाँसी, श्वेत कुष्ठ, प्रमेह, आम रोग आदि भी इनसे दूर होते हैं। आधुनिक युग में अधिक भौतिक सुविधाओं के कारण तथा शारीरिक कार्यों के अभाव के कारण स्थूलता (मोटापा) का रोग बढ़ता जा रहा है तथा इससे होने वाले रोगों की भी अधिकता हो रही है। उपरोक्त उपायों से मोटापा रोकने में सहायता मिल सकती है।

अतिकृशता अथवा दुबलेपन की चिकित्सा

अत्यधिक दुबलेपन को दूर करने लिए बृहण या सन्तपर्ण चिकित्सा व साधनों को प्रयोग में लाया जाता है। इस प्रकार की चिकित्सा से शरीर का पोषण और बल की वृद्धि होती है, तथा शरीर में भारीपन आता है। पृथ्वी और जल महाभूतों की अधिकता वाले द्रव्य, भोजन एवं साधनों का प्रयोग इसमें किया जाता है। इस आधार पर, भारी, शीतल, कोमल, मन्द, चिपचिपे, स्थूल व घने पदार्थ इस दृष्टि से उपयोगी हैं। दूध, घी, पनीर, मक्खन व चीनी का सेवन, स्नान, स्निग्ध पदार्थों का उबटन, अधिक नींद, स्निग्ध औषधियों से एनिमा व चिन्ताओं से दूर रहना तथा प्रसन्नता पूर्वक जीवन व्यतीत करना- से सब बृहण चिकित्सा मे आते हैं। इनके प्रयोग से शरीर का दुबलापन नष्ट होता है।

कृशता को दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए :

1. अच्छी नींद, प्रसन्नता, आरामदायक बिस्तर, सन्तोष और मन की निश्चिंतता।
2. चिन्ता, सम्भोग और शारीरिक श्रम से बच कर रहना यानी इनकी अति न करना।
3. अच्छे लगने वाले दृश्यों और सम्बन्धियों का दर्शन।
4. दही, घी, दूध, गन्ना, शालि चावल, उड़द, गेंहूँ एवं गुड़ से बने पदार्थों का सेवन।
5. मधुर और स्निग्ध द्रव्यों से तैयार एनिमा का प्रयोग।
6. नियमित रूप से तेल की मालिश, स्निग्ध द्रव्यों का उबटन और गर्म जल से स्नान।
7. सुगन्धियों (इत्रों) और मालाओं का प्रयोग।
8. सफेद वस्त्रों को धारण करना।
9. उचित समय पर दोषों को बाहर निकालना।
10. रसायन चिकित्सा एवं वृष्य (शुक्र बढ़ाने वाली) औषधियों का सेवन।
11. किसी प्रकार की चिन्ता से मुक्त रहना और पौष्टिक पदार्थों का सेवन करना।

इन सब उपायों से अधिक दुबलेपन एवं उससे होने वाले रोगों से छुटकारा पाया जा सकता है। संक्षेप में चिन्ता न करने, प्रसन्न रहने, अधिक नींद लेने और नित्य बृंहण गुण वाले आहार व औषधि के सेवन से अतिकृशता को दूर किया जा सकता है।

स्वास्थ्य रक्षक – स्वर्णिम सूत्र

- ☞ रात्रि को जल्दी सोना और प्रातः जल्दी (सूर्योदय से पहले) जागना स्वास्थ्य के लिए उत्तम है।
- ☞ स्वास्थ्य का अर्थ केवल शरीर का स्वस्थ होना नहीं, अपितु मन और मस्तिष्क का प्रसन्न रहना भी है।
- ☞ प्रातः काल उठने के बाद कुछ समय (10-15 मिनट) इष्टदेव का ध्यान मानसिक शान्ति को बनाये रखता है।
- ☞ स्वस्थ रहने और रोगों से बचने के लिए सदा पथ्य (हितकारी) भोजन सेवन करना चाहिए, पथ्य (परहेज) का सेवन करने वाले व्यक्ति को औषधि की आवश्यकता नहीं रहती।
- ☞ भोजन करते समय मन पूर्णतः शान्त और प्रसन्न रहना चाहिए। सारे दिन में कम से कम भोजन का समय तो मनुष्य को केवल अपने लिए सुरक्षित रखना चाहिए।
- ☞ भोजन सदा समय पर करना चाहिए। पहले खाये हुए भोजन के पाचन हुए बिना भोजन कर लेना स्वास्थ्य के लिए घातक है।
- ☞ रात्रि के समय दही का सेवन करना और दिन के समय सोना (ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर) स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।
- ☞ व्यायाम करना शरीर के लिए लाभदायक है, परन्तु अपनी शारीरिक शक्ति से अधिक व्यायाम या श्रम करना बहुत हानिकारक है।
- ☞ आवश्यकता से अधिक मोटापा और पतलापन, दोनों हानिकारक है परन्तु मोटापा अधिक हानिकारक और अनेक रोगों की जड़ है, अतः इससे सावधान रहें।
- ☞ रोग को कभी भी छोटा नहीं समझना चाहिए। ध्यान न देने पर सामान्य रोग भी भयंकर रूप धारण कर सकता है।